जिन मंदिर एवं
जिनबिंब की सार्थकता

✻ देवलोक से दिव्य सानिध्य ✻

प.पू. गुरुदेव श्री जम्बूविजयजी महाराज

✻ संपादक ✻

भूषण शाह

✻ प्रकाशक/प्राप्ति स्थान ✻

मिशन जैनत्व जागरण

'जंबूवृक्ष' सी/503-504, श्री हरि अर्जुन सोसायटी,
चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौंक के पास, घाटलोडीया
अहमदाबाद -380061
मो. 9601529534, 9408202125

जिन मंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता

© लेखक एवं प्रकाशक
* प्रतियाँ : 1000
* प्रकाशन वर्ष : वि. सं. 2077, ई. सं. 2020
* मूल्य : 100 ₹
* न्याय क्षेत्र : अहमदाबाद

प्राप्ति स्थान

'मिशन जैनत्व जागरण' के सभी केन्द्र

अहमदाबाद
101, शान्तम् एपार्ट.
हरिदास पार्क,
सेटेलाइट रोड,
अमहदाबाद

जयपुर (राज.)
आकाश जैन
ए/133, नित्यानंद नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर

नाशिक (महा.)
आनंद नागशेठिया
641, महाशोबा लेन
रविवार पेठ,
नाशिक (महा.)

आग्रा (उ.प्र.)
सचिन जैन
डी-19, अलका कुंज
खावेरी फेझ-2
कमलानगर - आग्रा

भीलवाड़ा (राज.)
सुनिल जैन (बालड़)
''सुपार्श्व'' जैन मंदिर के पास
जमना विहार-भीलवाड़ा

मुंबई
हिन्दी ग्रंथ कार्यालय
९, हीराबाग, सीपी टेन्क,
मुंबई - ४००००४
फोन : **98208 96128**

मुंबई
हेरत मणियार
ए/11 , ओम जोशी अपार्ट
लल्लुभाई पार्क रोड,
ऐंजललेंड स्कूल के सामने
अंधेरी (वेस्ट) मुंबई

Bangalore
Premlataji Chauhan
425, 2nd Floor,
7th B Main, 4th Block
Jaynagar, **Bangalore**

लुधियाणा
अभिषेक जैन,
शान्ति निटवेर्स
पुराना बाजार
लुधियाणा (पंजाब)

उदयपुर (राज.)
अरुण कुमार बडाला
अध्यक्ष अखिल भारतीय
श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक
युवक महासंघ उदयपुर शहर
427-बी, एमराल्ड टावर,
हाथीपोल,
उदयपुर-313001 (राज.)

* प्रस्तुत पुस्तक पू. साधु-साध्वी भदवंतों को पत्र प्राप्त होने पर भेंट स्वरूप भेजी जाएगी। * आवश्यकता न होने पर पुस्तक को प्रकाशक के पते पर वापस भेजने का कष्ट करें। * आप इसे Online भी पढ़ सकते हैं.... www.jaineliabrary.org. पर। * पुस्तक के विषय में आपके अभिप्राय अवश्य भेजें। * पोस्ट से या कुरियर से मंगवाने वाले प्रकाशक के एड्रेस से मंगावा सकते हैं।

* मुद्रक : भाग्य ग्राफिक्स (93270 57627)

पुष्प समर्पण

प्रेरणा एवं आशीर्वाद के साथ
शासन के हर एक कार्य में
जिनका सहयोग रहा है, ऐसे

सिद्धहस्त लेखक

प.पू. आ.पूर्णचंद्रसूरिजी म.सा.

एवं

शासन प्रभावक

प.पू.आ.युगचंद्रसूरिजी म.सा.

को

सादर समर्पित

– भूषण शाह

अनुक्रमणिका

क्र.		पृष्ठ.
1.	हृदय की बात	5
2.	प्रभु दर्शन सुख संपदा	6
3.	भक्ति है मार्ग मुक्ति का	9
4.	मूर्तिपूजा का रहस्य	14
5.	मूर्तिपूजा और जैन शासन	20
6.	मंदिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा का प्रयोजन	27
7.	मूर्तिपूजा से लाभ	29
8.	जिनमंदिरों की आवश्यकता एवं उपयोगिता	35
9.	प्राचीन जिनमन्दिर एवं मूर्तियों की विद्यमानता	39
10.	मूर्तिपूजा और जैनागम	42
11.	मूर्तिपूजा और अहिंसा	55
12.	जिनमंदिर जाने से लाभ	59
13.	मूर्तिकार और मूर्ति	60
14.	मूर्तिपूजा का वैज्ञानिक महत्त्व	63
15.	मेवाड़ में मूर्तिपूजा की प्राचीनता	65

हृदय की बात

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।

तस्मात् कारूण्य भावेन, रक्ष–रक्ष जिनेश्वरः।।

हे परमकृपालु परमात्मन् ! मैं अन्य –अन्य देव–देवी की शरण में न जाकर आपश्री के ही शरण में अर्थात् आपश्री के जिनमंदिर में दर्शन–वंदन हेतु आऊंगा.... क्योंकि आप ही करुणभाव से मेरा रक्षण करने वाले हो... हे परमात्मा मैं अन्य मिथ्यात्वी देवों के मंदिरों में न भटकूं इसलिए आप मेरा रक्षण करो... रक्षण करो.... रक्षण करो...।

यह चीज जो समझे उनके लिए सोना है... जो व्यक्ति भगवान के मंदिर नहीं जाता उनको अन्य–अन्य स्थानों पर भटकना पड़ता है... आज मंदिर न जाने वाले, मूर्तिपूजा न करने वाले लोग **बालाजी, शिवजी, शीतला माता, हनुमान, गणेश** आदि के मंदिरों में जाकर अपने सम्यक्त्व को दूषित करते हैं... और अन्य–अन्य जगह भटकने से उनकी श्रद्धा और नसीब भी भटकता रहता है। जिन मंदिरों का सबसे बड़ा फायदा यही हुआ है कि **जिन मंदिर जाने वाले लोग अपनी श्रद्धा अपने धर्म में स्थिर रहते हैं** और जहाँ जाते हैं धर्म की सुवास फैलाकर ही आते हैं....।

'जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता' पुस्तक मुख्यतः भटकते लोगों को स्थिर करने हेतु है। इस पुस्तक में हमने शास्त्र एवं युक्तियों से जिनमंदिर एवं जिनबिंब का मंडन किया है जो भव्य प्राणियों के लिए सन्मार्गदर्शक साबित होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में प.पू.आ.भ.पद्मभूषणरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.भ. निपुणरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.मु. ऋषभरत्नविजयजी म.सा., प.पू.मु.राजरत्न विजयजी म.सा. आदि की सहायता मिली है अतः मैं उनका ऋणि हूँ।

भव्य जीव इस पुस्तक को पढ़कर सन्मार्ग की प्राप्ति करें व जिनमंदिर में जिनबिंब की आराधना करके शीघ्र मोक्ष प्राप्त करें यही मंगलकामना...

–भूषण शाह

प्रभु दर्शन सुख संपदा

इस दुःखमय संसार में हमारा भ्रमण कर्मों के कारण चालू है। कर्मों का क्षय शुद्ध धर्म से संभव ही है।

शुद्ध धर्म की प्राप्ति जिनेश्वर की भक्ति से होती है और जिनभक्ति जिनेश्वर के प्रति प्रीति से प्रकट होती है। अतः सर्व प्रथम परमात्मा के प्रति प्रीति उत्पन्न करनी चाहिए।

निर्विष प्रीति–निःस्वार्थ प्रेम परस्पर के शुद्ध व्यवहार से होता है और वह व्यवहार प्रीतिपात्र व्यक्तियों के मिलन और दीर्घकाल के सहवास से हो सकता है।

परमात्मा अपने इस मध्यलोक से सात रज्जु दूर सिद्धि गति में विराजमान हैं और हम भरत क्षेत्र में रहते हैं.... तो परमात्मा के साथ मिलाप हुए बिना प्रीति कैसे की जा सकती है?

प्रभु प्रेम के लिए विह्वल बने हुए साधक को आश्वासन देते हुए शास्त्रवेत्ता सद्गुरु प्रभु प्रेम के गूढ़ रहस्य को समझाते हुए कहते हैं कि 'वीतराग के प्रति की गई प्रीति मोक्ष मार्ग का प्रधान अंग है और वह सब योगों का उत्तम बीज है।'

रागी के साथ प्रीति करने से राग की वृद्धि होती है और राग की वृद्धि होने से भव की वृद्धि होती है। वीतराग की प्रीति प्रशस्त है। प्रभु की प्रीति से ही वैराग्य ज्वलंत बनता है, आत्मा का सत्व विकसित होता है और क्रमशः संसार का उच्छेद होता है।

यह जीव अनादिकाल से शरीर, स्वजन, धन आदि इष्ट संयोग पर गाढ़ प्रीति धारण करता आया है, परन्तु वह प्रीति विष से भरी हुई है। इष्ट विषयों की आशा और आसक्ति आत्मगुणों की घातक है। वीतराग परमात्मा के साथ यदि बाह्य सुख की अभिलाषा से प्रीति की जाती है तो, वह प्रीति भी विषमय होती है। अतः सभी प्रकार की इष्ट पौद्गलिक आशा से परे होकर केवल आत्मगुणों की प्राप्ति और वृद्धि के लिए वीतराग परमात्मा के साथ प्रीति जोड़ना ही निर्विष प्रीति कही जाती है। जितने प्रमाण में पर–पदार्थों पर से प्रीति घटती है उतने ही प्रमाण में वीतराग परमात्मा के प्रति प्रीति जुड़ती है। वीतराग की प्रीति प्रशस्तराग है और पर पदार्थों की प्रीति अप्रशस्तराग है। अप्रशस्तराग पाप स्थानक है और प्रशस्तराग पुण्य–गुण का स्थान है।

प्राथमिक भूमिका में राग का सर्वथा क्षय होना संभव नहीं है। इसलिए पर–

पुद्गल पदार्थों के प्रति राग को घटाकर परमात्मा के प्रति राग को बढ़ाना चाहिए। अप्रशस्तराग को प्रशस्तराग में बदलने का यही सुन्दर साधन है। दोषयुक्त व्यक्ति पर राग करने से हममें दोष की वृद्धि होती है। और गुणयुक्त व्यक्ति पर राग करने से हममें गुण की वृद्धि होती है।

जब भक्त के हृदय में वीतराग परमात्मा के प्रति सच्ची प्रीति प्रकट होती है तब वह सारे सांसारिक कार्यों को गौण करके, छोड़ करके परमात्मा के ही स्मरण, अर्चन, ध्यान और उनकी भक्ति तथा आज्ञा पालन आदि करने में तत्पर बन जाता है। फिर क्षण भर के लिए प्रभु के सान्निध्य के बिना उसे चैन नहीं पड़ता। रात-दिन, सोते-जागते, उठते-बैठते प्रतिपल उसका मन प्रभु के अनन्त गुण और उनके महान उपकारों के स्मरण में ही रमण करता है।

अनादि निगोद की भयानक जेल से मुक्ति दिलाने वाले और मनुष्य भव आदि उत्तमोत्तम सामग्री का सुयोग कराने वाले अरिहंत परमात्मा को और उनके अगणित उपकारों को भक्तात्मा क्षणभर के लिए भी कैसे भूल सकता है?

जिन कृपासिन्धु परमात्मा की असीम कृपा से ही यह आत्मा इतनी ऊँची भूमि तक पहुँच सका है और आगे भी अगली उच्च भूमिकाओं को प्राप्त करेगा, सचमुच वे परमात्मा ही इस आत्मा के प्राण, त्राण, शरण और आधार है। उनके आलंबन से ही इस आत्मा की प्रभुता प्रकट हो सकती है।

श्री अरिहंत प्रभु की सेवा ही शिवसुख देने में समर्थ है। असंयम (आश्रव) का त्याग और संयम (संवर परिणाम) का सेवन -यही श्री अरिहंत प्रभु की सेवा है।

जिनाज्ञा का आराधक आराधना से मुक्ति प्राप्त करता है।

जिनाज्ञा का विराधक विराधना से संसार में भटकता है।

मोक्ष के पुष्ट निमित्त श्री अरिहंत परमात्मा है।

मोक्षरूपी कार्य के पुष्ट निमित्त कारण रूप श्री अरिहंत परमात्मा के योग से जीव को मोक्षरूचि उत्पन्न होती है। अर्थात् प्रभु की पूर्ण प्रभुता के स्वरूप को जानने से भव्य जीव को भी वैसी प्रभुता प्रकट करने की अभिलाषा होती है। प्रभु को देखते ही उसका हृदय आनंद से पुलकित बन जाता है। भवभीरु साधक भक्ति पूर्ण हृदय से करुणा-सिन्धु परमात्मा के समक्ष सदा यह प्रार्थना करता रहता है कि 'हे दीनदयालु, कृपा सिंधु प्रभो! इस संसार-सागर से मेरा निस्तार करो। मुझ दीन को भीषण भव भ्रमण से ऊगारो। आप ही मेरे तारक हो। आपके सिवाय अन्य कोई

भी मुझ अनाथ को पार उतारने में समर्थ नहीं है। आप ही मेरे समर्थ स्वामी हो। मेरी ज्ञानादि गुण सम्पदा को प्राप्त कराने वाले केवल आप ही पुष्ट निमित्त हो।

हे प्रभो ! आपके पास से ही मुझे महान् आध्यात्मिक संपत्ति मिलने वाली है, आपके द्वारा ही मुझे अलौकिक-दिव्य आनंद की अनुभूति होने वाली है। भक्त साधक इस प्रकार की कितनी ही आशाएँ और आकांक्षाएँ प्रभु से रखता है।

परमानन्द स्वरूप और शुद्ध गुणपर्याय रूप स्याद्वादमयी सत्ता के रसिया परमात्मा के दर्शनमात्र से भी मुमुक्षु साधकों को अपूर्व लाभ की प्राप्ति होती है। आत्मा की महान् शक्तियों का भक्तात्मा को भान होता है। सचमुच, आत्मानंद के भोगी आत्म स्वरूप में ही रमण करने वाले, शुद्ध तत्त्व के विलासी हे प्रभो ! आपके दर्शन मात्र से ही भव्य जीवों की विषय सुख की भ्रांति नष्ट हो जाती है, अव्याबाध, स्वाभाविक सुख का भास-ज्ञान होता है और उसे प्राप्त करने की इच्छा जागृत होती है।

जब तक यह जीव विषय सुख का अभिलाषी होता है, तब तक वह विषय सुख को ही साध्य मानकर उसके साधन रूप स्त्री, धन-धान्यादि प्राप्त करने के लिए सतत पुरुषार्थ करता रहता है, परन्तु जब प्रभु के दर्शन से अव्याबाध सुख की अभिलाषा उसमें जागृत हो उठती है, तब वह जीव अव्याबाध सुख को ही अपना साध्य मानकर उसके साधने में देव-गुरु-भक्ति, तत्व श्रद्धा आदि की उपासना में सतत पुरुषार्थशील रहता है और उस अव्याबाध सुख का कर्ता बनता है।

श्री अरिहंत परमात्मा के दर्शन मात्र से तत्व श्रद्धा, तत्त्वज्ञान आदि गुण की प्राप्ति होने पर मुमुक्षु आत्मा गुण की पूर्णता प्राप्त करने के लिए परमात्मा की पूजा, सेवा और आज्ञा पालन करने के लिए तत्पर बनता है।

पुद्गल के संयोग से उत्पन्न हुआ सुख सच्चा सुख नहीं है, यह तो केवल काल्पनिक सुख है। अतएव वह वास्तविक आनन्द या वास्तविक शान्ति देने में समर्थ नहीं हो सकता। जबकि आत्मा का सहज, अविनाशी, अव्याबाध सुख ही वास्तविक सुख है। यही वास्तविक शांति है। यही वास्तविक परमानंद है। ऐसे परमानन्द की प्राप्ति परमानन्दमय श्री अरिहंत परमात्मा की पूजा-भक्ति से ही हो सकती है। अतः श्री अरिहंत परमात्मा ही प्रत्येक जीव के मोक्ष (पूर्ण आत्मिक सुख) रूप कार्य के 'प्रधान निमित्त' है। जो कोई भव्यात्मा अपने शुद्ध सिद्धता रूप साध्य को सिद्ध करने के लिए श्री अरिहंत परमात्मा का पूजन, स्मरण, ध्यानादि विधि एवं बहुमान पूर्वक करता है, वह अवश्य स्वसाध्य को सिद्ध करता है।

भक्ति है मार्ग मुक्ति का

भक्ति मुक्ति का मार्ग है,
आसक्ति संसार वृद्धि का मार्ग है।
भौतिक पदार्थों के प्रति प्रेम आसक्ति है।
देव-गुरु-धर्म के प्रति प्रेम भक्ति है।

जो व्यक्ति भौतिक पदार्थों में, इन्द्रियों के विषयों में लीन रहता है, वह भोगी कहलाता है, लेकिन जो व्यक्ति भगवान के वीतराग स्वरूप में लीन रहता है, उसे योगी कहते हैं।

अपने शरीर में आत्म बुद्धि-अहंभाव रखना ही संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण है। हमें मोह है, प्रेम है अपने नाम का, अपने रूप का, अपने गुण का। यही हमारे दुःख की जड़ है।

अपने नाम के मोह को समाप्त करने के लिए परमात्मा के नाम का, अपने रूप के मोह को नष्ट करने के लिए परमात्मा के रूप का, उनकी सौम्य प्रशांत वीतरागमय मुद्रायुक्त प्रतिमा का तथा अपने गुणों के अहंकार को समाप्त करने के लिए श्री जिनेश्वर परमात्मा के गुणों का अहर्निश स्मरण, दर्शन पूजन तथा चिंतन करना जरुरी है।

मोह अनादि का आत्मशत्रु है। उसको नष्ट करने के लिये परमात्मा का नाम, उनकी मूर्ति और उनके गुणों का चिंतन ही एक मात्र आलंबन है। प्रभु नाम का स्मरण-जाप करने से हमारी रसना पवित्र होती है। प्रभुमूर्ति के दर्शन-पूजन से हमारी आँखें निर्विकार बनती है, हमारी काया धन्य होती है। इस तरह जिनेश्वर परमात्मा के गुणों के चिंतन से हमारा चित्त निर्मल व स्थिर बनता है।

परमात्मा के नाम, रूप (आकार-मूर्ति) और गुण के आलंबन के अलावा स्वयं को निर्विकार, निर्मल बनाने का कोई अन्य उपाय नहीं है।

देह दृष्टि को देव दृष्टि में परिवर्तित करने हेतु हमें वीतराग श्री जिनेश्वर भगवान की उपासना को जीवन में प्रधानता देनी होगी। वीतराग की उपासना से ही विषय वासना, एवं कषाय नष्ट हो सकते हैं, दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं।

पौद्गलिक पदार्थों के साथ प्रेम करने का जीव का अभ्यास अनादि से है।

उसको रूपान्तरित करने के लिये प्रभुभक्ति में जुट जाना जरुरी है। प्रभु भक्ति से चित्त की शुद्धि होती है। प्रभु प्रतिमा की पूजा करने से मन को अपार प्रसन्नता होती है। एक अनिर्वचनीय आत्मिक आनन्द का अनुभव होता है।

बिन्दु का अस्तित्व कितना? एक ही क्षण में वह विलीन हो जाता है लेकिन वही बिन्दु यदि सिन्धु में समाहित हो जाए तो अमर बन जाता है। कर्माधीन हमारी आत्मा बिन्दु जैसी है। कर्म के वशीभूत होकर उसे बार-बार जन्म-मरण करने पड़ते हैं। मनुष्य जन्म में ही कर्मक्षय करने का देव-दुर्लभ अवसर हमें मिलता है। यदि हम मनुष्य भव का कर्मक्षय के लिये सदुपयोग करलें और बिन्दु रूप आत्मा को सिन्धु रूप परमात्मा में मिलादें तो अमर बन जावें अर्थात् सिद्ध बन जावें।

श्री जिनेश्वर परमात्मा का नाम लेने से, उनकी मूर्ति (स्वरूप) के दर्शन-वंदन-पूजन करने से हमारे हृदय-मंदिर में साक्षात् प्रभु विराजते हैं, यह अनुभूति होती है। जब हमारे हृदय-मंदिर में प्रभु विराजमान होते हैं, हमें उनके स्वरूप का भान होता है तब सभी कषाय नष्ट हो जाते हैं, माया पलायन कर जाती है और लोभ तो बेचारा रहता ही नहीं। कामवासना मरण पा जाती है। इस तरह विषय व कषायों के हटते ही आत्मा के शुद्ध स्वरूप के दर्शन हमें होते हैं। यह ठीक वैसे ही होता है जैसे बादलों के हटते ही सूर्य के दर्शन होते हैं।

वैसे तो श्री जिनेश्वर परमात्मा अनामी हैं, निराकार हैं, अरूपी हैं। उनका दिव्य स्वरूप हमें बाह्य चक्षु से दिखाई नहीं पड़ता है लेकिन वे परम दयालु हैं, प्रेम युक्त हैं, ज्ञान-चिन्मय हैं, अचिन्त्य शक्ति के स्वामी हैं। इसलिये वे अनामी होने पर भी नाम से, निराकार होते हुए भी आकार से और चिन्मय गुण स्वरूप से भक्त के हृदय मंदिर में विवेक चक्षु, अन्तः चक्षु द्वारा दिखाई देते हैं। श्री जिनेश्वर परमात्मा विवेक चक्षु के माध्यम से हमारे आत्मस्वरूप का हमें भान कराते हैं। हमारे प्रभु इतने अधिक कृपालु हैं कि वे हमें परमात्मा बना देते हैं। चाहिये हममें शुद्ध भक्ति-भावना व पूर्ण आत्म समर्पण।

हर एक आत्मा में परमात्मा का स्वरूप समाहित है। उस परमात्म-स्वरूप का प्रकटीकरण तब शुरू होता है, जब हम उनकी शरण में जाते हैं, उनकी भक्ति में लीन होते हैं, हमें संसार में प्रभु के अलावा और कुछ नहीं दिखता है। भक्त जब भक्ति करते करते तन्मय हो जाता है, तभी उसे आत्मा में जिनेश्वर भगवान के स्वरूप का भान होता है।

भक्ति के प्रमुख साधन

आत्म स्वरूप को प्राप्त करने का सबसे सरल मार्ग है भक्ति–योग।

वीतराग परमात्मा की उपासना–भक्ति करने का मुख्य साधन है–उनका नाम–स्मरण, उनकी वीतरागमय सौम्य मूर्ति का दर्शन, वंदन, पूजन और उनके गुणों का अहर्निश चिंतन। हम अपनी आत्मा के मूल स्वरूप को, उसके अनामी, निराकार अरूपी, चिदानंद–मय स्वरूप को तभी पा सकते हैं जब हम परमात्मा की भक्ति में, उनके स्वरूप के दर्शन, वंदन पूजन में पूर्ण समर्पण भाव से समर्पित हो जावें। देह भाव को विस्मृत करके आत्म स्वरूप में लीन हो जावें।

प्रभु प्रतिमा–मुख्य आलंबन है।

भक्ति–योग के लिये प्रमुख साधन है श्री जिनेश्वर परमात्मा का नाम स्मरण तथा उनकी प्रतिमा का पूजन, उनके दर्शन, वदंन आदि। प्रभु की प्रतिमा (मूर्ति) तो प्रभु का मूर्त स्वरूप है। उस मूर्त स्वरूप का दर्शन, पूजन, स्तवन और ध्यान करने से ही हमें अमूर्त परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। अमूर्त परमात्मा के दर्शन मिलने से हम अपने आत्मा के अमूर्त स्वरूप को पा सकते हैं। बिना आलंबन कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। प्रभु–प्रतिमा मुख्य आलंबन है। इसके सहारे आत्मा को परमात्म–स्वरूप में प्रकट किया जा सकता है।

सच तो यह है कि प्रभु मूर्ति में जो प्रभु को देखता है वही प्रभु बनता है। जो अपनी जड़ बुद्धि से प्रभु मूर्ति को जड़ पत्थर मानता है वह स्वयं जड़ पत्थर के समान ही अज्ञान ग्रस्त रहता है।

युक्ति, तर्क आत्मानुभव तथा ज्ञानियों का कथन जो कि शास्त्र रूप में हमारे पास है, इन सबका एक ही निर्देश है कि श्री जिनेश्वरदेव की उपासना के लिये उनके स्वरूप (मूर्ति) की पूजा नित्य प्रति दिन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। **पहले प्रभु से प्रीति, फिर प्रभु की भक्ति; फिर प्रभु आज्ञा का विशिष्ट पालन व प्रभु का ध्यान यही योग साधना का क्रम है।** संसार सागर से तिरने का, पार उतरने का, यही उपाय है। मोह व मिथ्यात्व के गहन अंधकार में डूबे हुए मनुष्य (जीव) को प्रभु प्रतिमा का दर्शन सूर्य की एक हल्की सी किरण रूप है। यदि वह इस किरण का भी आलंबन ले ले तो फिर धीरे–धीरे पूर्ण सूर्य के प्रकाश को पाकर क्रमशः आठों कर्मों का क्षय करके सिद्ध स्वरूप को पा सकता है।

मूर्तिपूजा की अत्यंत आवश्यकता !!!

जब तक प्रभु प्रतिमा की पूज्यता और उपकारिता के प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न नहीं होगी, तब तक हम अज्ञान रूपी अंधेरे में भटकते रहेंगे। ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग, विद्वत्ता, वक्तृत्व, लोकप्रियता, सौभाग्य आदि गुणों के साथ यदि हममें देव-गुरु के प्रति भक्ति न हो तो हृदय अहंकार से भर जाता है। जहाँ अहंकार होता है, वहाँ अधःपतन निश्चित होता है। केवल भक्ति का मार्ग ही ऐसा है जो हृदय में विनय का, नम्रता का, मृदुता का, ऋजुता का, व समर्पणता का भाव उत्पन्न करता है। जब तक व्यक्ति में विनय, नम्रता, मृदुता, ऋजुता व समर्पण भाव न हो तब तक हम चाहे जितना ज्ञान प्राप्त करलें, चाहे जितना कठोर तप कर लें, चाहे बड़े से बड़ा त्याग करलें, फिर भी हमारी आत्मा का उद्धार होने वाला नहीं है।

भक्ति का प्रभाव

जिस प्रकार चुंबक लोहे को खींचता है ठीक उसी प्रकार भक्ति मुक्ति को खींचती है। चिंतामणि रत्न पत्थर (जड़) होते हुए भी विधि पूर्वक उपयोग करने से सर्व मनोवांछित पूर्ण करता है, उसी तरह प्रभु की मूर्ति भी चिन्तामणि रत्न के समान है। यदि हम उसकी आराधना विधि पूर्वक तन-मन से करें तो मुक्ति हमसे दूर नहीं रह सकेगी। वह भक्ति रूपी चुम्बक से स्वयं खींच आवेगी।

हमारे हृदय का भक्तिभाव जितना पवित्र, निर्मल शुद्ध व उच्चतम होगा, उसका फल भी उतना ही सर्वोत्कृष्ट होगा।

भक्ति सदैव निष्काम भाव से करना चाहिये, भक्ति में सांसारिक सुखों, भौतिक लालसाओं का तनिक भी स्थान नहीं है। इसलिये वीतराग प्रभु की पूजा, उपासना परमार्थ के लिये ही करना चाहिये।

श्री जिनेश्वर देव की भक्ति से ही आत्मा परमानन्द को प्राप्त करती है। भक्त को प्रभु की भक्ति में जो परम आनन्द की अनुभूति होती है। उसका वर्णन शब्दों में करना सम्भव नहीं है। वह केवल आत्मानुभव की वस्तु है। जो व्यक्ति इसका रसास्वादन करना चाहे वह प्रयोग रूप में 8-10 दिन पूजा करके देखे। **प्रभु की नव अंग पूजा भक्ति भाव से करे, फिर उनके गुणों को स्मरण करते हुए, दृष्टि को प्रभु**

के स्वरूप अवलोकन में लगाए, तब साक्षात् आनन्द का अनुभव हुए बिना न रहेगा।

भक्ति के परम आनन्द का माप वे ही कर सकते हैं, जिन्होंने कभी भक्ति की हो। जो मनुष्य जन्म लेने के बाद जिनशासन पाकर भी भक्ति के आनन्द से वंचित है, वास्तव में वे आत्मिक आनन्द से ही वंचित है।

मूर्ति-पूजा का रहस्य

आराधक अपने आराध्य की आराधना, उपासना और पूजा करता है। आराध्य जीवित हो तो आराधक उसके शरीर की पूजा करके उसके प्रति अपने हृदय की भक्ति, विनय और श्रद्धा प्रकट करता है। आराधक की भक्ति और श्रद्धा केवल उसके शरीर के प्रति नहीं है, अपितु शरीर में विराजमान आत्मा के उन गुणों के प्रति भी है, जिन गुणों के कारण वह व्यक्ति पूज्य या आराध्य बना है। संसार में शारीरिक सौन्दर्य या विशेषता के कारण कोई पूज्य और आराध्य नहीं बनता, अपितु वह अपने विशिष्ट गुणों के कारण पूज्य और आराध्य बनता है। अतः मुख्यतः व्यक्ति के गुण पूज्य और आराध्य हैं, किन्तु गुण विशिष्ट आत्मा जिस शरीर में अधिष्ठित है, वह शरीर भी पूज्य बन जाता है। आराध्य की जीवित दशा में भी गुण ही आराध्य होते हैं। आराधक उन गुणों और उन गुणों से विशिष्ट व्यक्ति की आराधना इस उद्देश्य से करता है, जिससे वह उन गुणों से प्रेरणा प्राप्त करके अपने अन्दर भी उन गुणों का विकास कर सके और एक दिन आराध्य के समान ही आदर्श पुरुष बन सके। व्यक्ति-पूजा के बहाने वह गुण-पूजा है, वह आदर्श-पूजा है। सभी कालों, देशों और जातियों में यह आदर्श-पूजा होती रही है और जब तक मानवीय गुणों के प्रति व्यक्ति की स्पृहा जीवित रहेगी, तब तक यह गुण-पूजा और आदर्श-पूजा संसार में प्रचलित रहेगी। व्यक्ति अपने महान् गुणों के कारण ही जन-जन में आराध्य बनता है।

किन्तु जब आराध्य व्यक्ति संसार पर अपने गुणों की अमिट छाप छोड़कर इस संसार से चला जाता है, तब उसके भक्तगण उसकी स्मृति सुरक्षित रखने के लिए नाना प्रकार के उपाय करते हैं। उनके जीवन-परिचय सम्बन्धी ग्रंथ प्रकाशित करते हैं, चित्र बनाते हैं। आराध्य की मूर्ति का निर्माण- चाहे वह धातु की हो, सामान्य पाषाण की हो या किसी बहुमूल्य पाषाण की, मूर्ति उनकी स्मृति सुरक्षित रखने का सबसे सशक्त और प्रभावशाली माध्यम है, क्योंकि मूर्ति में आराध्य के रूप और आकार की मुद्रा भी होती है। ग्रंथ व्यक्ति का जीवन-परिचय और उसकी विशेषताएँ बता सकता है, किन्तु वह आराधना का सबल साधन या आलम्बन नहीं हो सकता। चित्र काष्ठमूर्ति आदि अल्प आयु वाली होती हैं, वह जल्दी विकृत हो जाती हैं और उसमें श्रद्धा जमती नहीं, किन्तु पाषाण आदि की मूर्ति दीर्घकालिक होती है, जल्दी विकृत नहीं होती और उसमें आराध्य की वही मुद्रा और आकार होती है, जिसका आलम्बन लेकर आराधक आराध्य और उसके

गुणों का ध्यान, चिन्तन और मनन कर सकता है। संसार में मूर्ति-निर्माण और मूर्ति-पूजा का प्रचलन इन्हीं कारणों से है। मूर्ति मूर्तिमान की तदाकार स्थापना है।

व्यक्ति का धार्मिक लक्ष्य क्या है? वह क्या बनना चाहता है ? वह क्या पाना चाहता है? सबसे पहले व्यक्ति को यह निर्धारण करना होता है। तदनन्तर अपने लक्ष्य के लिए आदर्श आराध्य का चुनाव करना पड़ता है। यह सब होने पर वह अपने ढंग से आराध्य की आराधना करने लगता है। जो ईश्वर को सर्वशक्तिमान और जगत संचालक मानते हैं और उनके अवतार देवी, देवता या भगवान के किसी रूप की आराधना, मूर्ति बनाकर करते हैं, उनके यहाँ मूर्ति-पूजा का प्रयोजन अपने आराध्य के गुणों की पूजा नहीं, बल्कि उनकी पूजा का उद्देश्य भगवान (देव या देवी) को अपनी भक्ति से या पूजा से प्रसन्न करके उनका अनुग्रह प्राप्त करना है। उनकी मान्यता है कि मूर्ति में ही भगवान हैं, अतः यह मूर्ति नहीं, भगवान हैं और यह हमारी भक्ति-पूजा से प्रसन्न होकर हमारी मनोकामनाएँ पूर्ण कर देगा।

जैन धर्म का आदर्श-मूर्ति पूजा

जैनधर्म ने मूर्ति-पूजा के क्षेत्र में भी एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। यह अध्यात्म प्रधान धर्म है। इसलिए जिन्होंने रत्नत्रय द्वारा आध्यात्मिक लक्ष्य की सिद्धि की है और जिस आसन और मुद्रा में आध्यात्मिक साधना में निरत रहे हैं, उसी वीतराग मुद्रा, ध्यान-साधना के अर्धोन्मीलित नयन और पद्मासन, अर्धपद्मासन या कायोत्सर्गासन वाली मूर्तियों का निर्माण किया। मूर्ति के दर्शन करते-करते ही दर्शक पर यह प्रभाव पड़ता है कि जिसकी यह मूर्ति है, वह अवश्य ही वीतराग, कामविजेता होना चाहिए। जिसने समस्त आत्मिक विकारों को जीत लिया है, वह निर्ग्रन्थ है, और उसमें बाह्य और अभ्यन्तर किसी प्रकार की ग्रन्थि शेष नहीं है। जैनधर्म मूर्ति को अरिहन्त और जिनेन्द्र भगवान का प्रतीक मानता है, मूर्ति पूजा को प्रतीक-पूजा स्वीकार करता है और वह मूर्ति के द्वारा मूर्तिमान के गुणों की पूजा का विधान करता है। जैन धर्म पूजा का समर्थक है, इसलिए जैन धर्म की पूजा-पद्धति या मूर्ति-पूजा में (भगवान से) ऐहिक कामनाओं और लौकिक इच्छाओं की याचना नहीं की जाती।

वस्तुतः जैन मूर्ति-पूजा का उद्देश्य मूर्ति के द्वारा मूर्तिमान के गुणों की पूजा है। न तो यह जड़ पाषाण (पत्थर) की पूजा है, न इससे किसी लौकिक कामना-पूर्ति की याचना की जाती है। जैनधर्म यह नहीं मानता कि मूर्ति में भगवान है, बल्कि

वह मूर्ति के माध्यम से भक्त की भावना में भगवान को विराजमान करने पर बल देता है। भावना में भगवान हों तो समस्त कामनाएँ निःशेष हो जाती हैं। मूर्ति पूजा का यह आदर्श संसार में जैन धर्म के अतिरिक्त किसी ने उपस्थित नहीं किया।

सबसे प्राचीन है जैन धर्म की मूर्तिपूजा

जैन वाङ्मय में मूर्ति-निर्माण और मूर्ति-पूजा एवं प्रतीक-पूजा का इतिहास पुराना है। मानव-जगत् में सर्वप्रथम आद्यतीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती ने जैन मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण कराया था। प्रागैतिहासिक काल में मूर्ति-निर्माण के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस काल की अन्तिम कड़ी का सूत्र मथुरा का वो देव स्तूप है, जो तीर्थंकर पार्श्वनाथ (ई. पू. 800) काल में कुबेरदेवी ने निर्मित कराया था। इसके कुछ काल पश्चात् करकण्ड नरेश ने धाराशिव में गुहा-मंदिर और पार्श्वनाथ मूर्तियाँ निर्मित कराईं। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा के पुरातत्त्वावशेषों में ऋषभदेव प्रतिमा की उपलब्धि से भी जैन मूर्ति कला का इतिहास आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व पहुँच जाता है। पुरातत्त्ववेत्ताओं के मत में लोहनीपुर (पटना) से प्राप्त जिन मूर्ति भारतीय मूर्तियों में प्राचीनतम है, जो आजकल पटना म्यूजियम में रखी हुई है। यह मूर्ति मौर्यकाल की मानी जाती है।

विद्वानों की यह धारणा है कि देव-मूर्तियों के निर्माण का प्रारम्भ जैनों ने किया था। इनके अनुकरण पर शिव-मूर्तियों का निर्माण हुआ, विष्णु, बुद्ध आदि की मूतियों के निर्माण का इतिहास बहुत पश्चात्कालीन है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि अन्य धर्मों ने जैनधर्म के देव-मूर्ति सम्बन्धि विचार का तो अनुकरण किया, किन्तु उसके आदर्श का, गुण-पूजा का अनुकरण नहीं किया।

संसार में मूर्ति-पूजा का प्रचलन पहले हुआ और उसका विरोध बाद में। भारत में मूर्ति-पूजा का जब दुरुपयोग होने लगा और मुस्लिम काल में जुनूनी लोग मूर्तियों का विध्वंस करने लगे, तब ऐसे भी सम्प्रदाय उत्पन्न हुए, जिन्होंने मूर्ति-पूजा को जड़-पूजा कहकर उसका विरोध किया। मंदिर और मूर्तियाँ हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, जिनमें हमारे अतीत का इतिहास, पुरातत्त्व, कला, संस्कृति सुरक्षित है। ये न होते तो हमारा इतिहास क्या होता? जिनके पास ये नहीं हैं, वे सांस्कृतिक दृष्टि से दरिद्र हैं।

मूर्तिपूजा गुण पूजा ही है।

क्या संसार में ऐसा कोई धर्म या व्यक्ति है जो देवालय में मूर्ति के सामने जाकर मूर्ति के पाषाण, उसकी जाति, वर्ण, उसकी खान और उस मूर्ति के निर्माता शिल्पी के गुणगान, स्तुति और पूजा करता हो? निश्चय ही ऐसा कोई धर्म या सम्प्रदाय नहीं, जो इसका समर्थन या स्वीकृति देता हो। मूर्ति के सामने जाकर भक्त स्तुति पाठ करता है या पूजा करता है, वह सब अपने आराध्य भगवान की ही करता है। **इसलिए जो लोग मूर्ति–पूजा को जड़ पूजा कहते हैं, वे अज्ञान और भ्रान्तिवश ही ऐसा कहते हैं। मूर्ति मूर्तिमान का दिशा संकेत करती है। मूर्ति किसी धर्म या व्यक्ति की रुचि का मापदण्ड है, जैसी रुचि, वैसी मूर्ति।** व्यक्ति की जैसी रुचि, संस्कार और लक्ष्य होता है, वह उसके अनुरूप देवालय में मूर्ति के दर्शनार्थ जाता है और वहाँ उस मूर्ति में मूर्तिमान की भावना करके उसकी स्तुति और पूजा करता है। जो क्रूर प्रकृति के लोग हैं, मांसाहारी हैं, हिंसा में जिनकी रुचि है वे ऐसे ही देव की कल्पना करके उसकी मूर्ति के सामने जाते हैं, जो देव क्रूर हिंसक, रक्तपिपासु और मांसाहारी हो। जो कामी, क्रोधी, नशे का सेवन करने वाले हैं वे अपने संस्कारों के अनुरूप देव की कल्पना करके उसकी मूर्ति के सामने जाकर अपने देव की स्तुति–पूजा करते हैं। स्तुति–पूजा से उनके संस्कार विकसित होते हैं। जैसे कोई विषयी व्यक्ति किसी सुन्दर स्त्री को देखकर विषयातुर हो उठता है। स्त्री ने उस व्यक्ति के मन में विषय–वासना की भावना नहीं जगाई। यह भावना तो उसके मन में पहले से विद्यमान थी, स्त्री को देखकर उसकी वासना की भावना और जागृत होकर भड़क उठी है। इसी प्रकार अपनी रुचि और लक्ष्य के अनुरूप देवालय में देव–मूर्ति की स्तुति–पूजा करने से पहले से विद्यमान संस्कार अधिक प्रस्फुटित और विकसित होते हैं।

जिसकी रुचि आत्म–कल्याण की है, जिसके संस्कार राग को छोड़कर वीतरागता के हैं और जिसका लक्ष्य कर्मों से आत्मा को मुक्त करने का है, वह वीतराग और संसार से मुक्त भगवान की आराधना करता है। **ऐसे ही भगवान की मूर्ति के समक्ष उस भगवान की स्तुति करता है, उनके गुणों की पूजा, भक्ति करता है।** वहाँ देवालय का परिवेश और वातावरण वीतरागतामय है, भगवान की मूर्ति वीतराग मुद्रा में है, मूर्ति के माध्यम से भगवान की जो स्तुति और पूजा की गई , वह भी भगवान के गुणों और वीतरागता की ही स्तुति और पूजा थी। अतः उस भक्त के आत्मिक गुणों और वीतरागता के संस्कारों का इससे विकास होता है और

वह अपने लक्ष्य-मुक्ति की ओर बढ़ता जाता है। जिनेन्द्र भगवान की स्तुति और पूजा का यही रहस्य है। स्तुति पूजा द्वारा मंदिर के भगवान को हम नहीं जगाते, न उन्हे प्रसन्न करते हैं। हम तो उस भगवान को जगाते हैं और प्रसन्न करते हैं, जो हमारे अन्तर में विद्यमान है। मेरा भगवान मेरे अन्दर बैठा हुआ है। वस्तुतः मूर्ति के बहाने मैं अपने भगवान की ही स्तुति-पूजा करता हूँ। मेरा भगवान मैं ही हूँ। क्योंकि परमात्म तत्त्व तो मेरी आत्मा में भी बसा हुआ है। आचार्य पूज्यपाद ने कहा है-

यः परमात्मा स एवाहं, योऽहंसः परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यः, नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।।

जो परमात्मा है, वह मैं ही हूँ। जो मैं हूं, वही परमात्मा है। मैं अपने द्वारा ही उपास्य हूँ, अर्थात मुझे अपने आप अपनी उपासना करनी है। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

द्रव्यपूजा एवं भावपूजा

सुदेव यानि सच्चा देव वही कहलाता है, जो अठारह दोषों से रहित है, जिसने चार घाती कर्मों का नाश करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य अपने आत्मा में प्रकट किए हैं, दिव्य ध्वनि द्वारा उपदेश देते हैं, जिनका शरीर एक हजार आठ लक्षणों से युक्त है, जो आठ प्रातिहार्य आदि विभूतियों से युक्त है और जो भव्य जीवों को मोक्ष का मार्ग बताते हैं। ऐसे देव या भगवान हमारे लिए परम उपकारी हैं। इनमें उनके कुछ विशेषण तो पुद्गलाश्रित हैं और कुछ जीवाश्रित हैं। तत्त्वज्ञान पूर्वक इन दोनों विशेषणों में अन्तर समझ लेना चाहिए। समवसरण, अष्टप्रातिहार्य आदि विभूतियाँ पुद्गलाश्रित है। तीर्थंकर भगवान इन पुद्गलाश्रित विभूति के कारण महान् नहीं हैं। वे महान् हैं अपनी जीवाश्रित विभूतियों के कारण, क्योंकि वह अनन्त ज्ञानादि विभूति कर्मों के क्षय से प्राप्त हुई है। भक्त श्रावक को भी यही विभूति स्पृहणीय है। इस विभूति से सम्पन्न भगवान की पूजा वह अपनी आत्मा में इसी विभूति को प्रकट करने के लिए करता है। इसीलिए भगवान की पूजा करते हुए उसकी दृष्टि भगवान के इन्हीं गुणों पर टिकी रहती है और वह मुख्यतः इन्हीं की पूजा करता है।

देव पूजा भी दो प्रकार की है-द्रव्य पूजा और भाव पूजा। जल, चंदन आदि अष्ट द्रव्यों से जो पूजा की जाती है, वह पुद्गलाश्रित द्रव्य पूजा है और भगवान

तथा अपने आत्म गुणों की ओर उपयोग करता है, वह जीवाश्रित भाव पूजा है। पुद्गलाश्रित द्रव्य पूजा से विशेषतया शुभ कर्म पुद्गल का बन्ध होता है, जीवाश्रित भाव पूजा से कर्मों का क्षय होता है। **द्रव्य पूजा भाव पूजा के लिए आलम्बन और साधन है। चंचल चित्त वाले गृहस्थों को आलंबन आवश्यक है, बिना आलम्बन के भाव स्थिर नहीं होते।** किन्तु मनोनिग्रह के अभ्यासी स्थिरचित्त मुनिजनों के लिए द्रव्यपूजा की आवश्यकता नहीं है। वे निरालम्बी भाव पूजा ही करते हैं। पूजा के आठ द्रव्यों में जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और इन सबको मिलाकर अर्घ्य आठों द्रव्य अमुक भावनाओं के प्रतीक हैं। जैसे 'जल' जन्म-जरा-मृत्यु के नाश का, 'चन्दन' संसार के ताप के नाश का, 'अक्षत' अक्षय पद प्राप्ति का, 'पुष्प' काम के नाश का, 'नैवेद्य' क्षुधा की शान्ति का, 'दीपक' मोहान्धकार के नाश का, 'धूप' अष्टकर्म के नाश का 'फल' मोक्ष-फल की प्राप्ति का प्रतीक है। इन सभी का बहुत गहरा रहस्य है।

देव-पूजा अशुद्धता में नहीं की जाती। उसके लिए बाह्य और अन्तः शुद्धि - दोनों प्रकार की शुद्धियों की आवश्यकता है। बाह्य शुद्धि में शरीरशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, वस्त्रशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि सभी आवश्यक हैं। यह द्रव्यशुद्धि कहलाती है। अन्तः शुद्धि भाव-शुद्धि कहलाती है। द्रव्यों का आलम्बन लेकर हम भावना में भगवान का आह्वान करते हैं और अपनी भावना को भगवानमय बना लेते हैं। भावों में भगवान होंगे तो भावों में विषय-कषाय की अशुचि नहीं टिकेगी। भावों में विषय कषाय की अशुचि होगी तो भावों में भगवान अवतरित नहीं होंगे। भावों में जहाँ भगवान हैं, वहाँ वे अपने द्रव्य-गुण-पर्याय सहित ही विराजमान हैं। ज्ञान उनको, उनके समग्र रूप को जानता है और श्रद्धा में अपने भगवान का द्रव्य-गुण-पर्याय सहित स्वरूप विराजमान है। यह होती है श्रावक की देव-पूजा।

अतः प्रतिमा को परमात्म स्वरूप मानकर उसकी पूजा-भक्ति करना वर्तमान युग में श्रेष्ठ आलम्बन कहा जा सकता है।

मूर्ति पूजा और जैन शासन

मूर्ति पूजा विश्व व्यापी

ऐतिहासिक खोज से मालूम हुआ है कि जितना प्राचीन संसार है उतनी ही प्राचीन मूर्ति पूजा है। प्राचीन काल से लगाकर विक्रम की सातवीं शताब्दी के पूर्व तक विश्व में सभी भागों में मूर्ति पूजा किसी न किसी रूप में होती थी। क्या युरोप, क्या एशिया और क्या अफ्रीका सभी महाद्वीपों में मूर्तिपूजा का चलन था।

मूर्ति पूजा का इतिहास, मानवजाति के साथ जुड़ा हुआ है। इस विश्व में जब से मानवजाति का अस्तित्व है तभी से मूर्तिपूजा है। इस तरह विश्व के साथ मूर्तिपूजा का गहरा सम्बन्ध है। इसका कारण स्पष्ट है कि विश्व स्वयं मूर्तिमान पदार्थों का समूह है।

विश्व में छः द्रव्य

जैन तत्त्व दर्शन के अनुसार विश्व में छः द्रव्य है। 1) धर्मास्तिकाय, 2) अधर्मास्तिकाय 3) आकाशास्तिकाय 4) पुद्‌गलास्तिकाय 5) जीवास्तिकाय और 6) काल । ये द्रव्य शाश्वत हैं। इनमें पाँच द्रव्य अमूर्त हैं व एक द्रव्य मूर्त है। इस जगत् में केवल पुद्‌गलास्तिकाय ही मूर्त द्रव्य है। शेष पाँचों द्रव्य अमूर्त है। लेकिन पाँच अमूर्त द्रव्यों का ज्ञान भी मूर्ति द्रव्य के माध्यम से ही होता है, इस तरह मूर्तिमान द्रव्य अनादि और अनन्त है। **जब मूर्त द्रव्य अनादि है तो मूर्ति भी अनादि हुई।**

मूर्ति का अर्थ

मूर्ति का अर्थ-आकृति, चित्र, फोटो, प्रतिमा, प्रतिबिम्ब, नक्शा आदि है। ये सभी शब्द मूर्ति के पर्यायवाची है। सभ्य मानवसमाज में सदैव से ही मूर्ति का आदर रहा है। मूर्ति-पूजा का सिद्धांत विश्वव्यापी है। जिस प्रकार सोना और उसका पीला रंग अभिन्न है ठीक उसी तरह विश्व और विश्ववंद्य मूर्तिपूजा भी अभिन्न है।

शब्द से अधिक शक्ति आकृति में

शब्द से अनेक गुणी शक्ति आकृति में है, चित्र में है, मूर्ति में है और उसमें भी श्री वीतराग अरिहंत परमात्मा की सौम्य रस मग्न प्रतिमा का स्थान अग्रगण्य है।

आत्मा एवं परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस प्रकार के वीतराग एवं प्रशान्त स्वरूप को दर्शाने वाली जिन प्रतिमाओं के दर्शन, वंदन, पूजन ध्यान आदि साधक अवस्था में नितान्त आवश्यक है। प्रभु प्रतिमा वस्तुतः मानव के दिव्य भावचिन्तन का ही मूर्त स्वरूप है, आन्तरिक भावों की शुद्धि तथा वीतरागता को प्रतिबिम्बित करने वाली है। इसका लक्ष्य आत्मा में समाहित वीतरागता, प्रशम, उदासीनता आदि दिव्य गुणों, भावों की प्राप्ति और दीप्ति के लिए है।

मनुष्य जब भी मूर्ति या चित्र के सामने जाकर पूजा, वन्दना स्तवना करता है तो वह पूजा, वन्दना, स्तवना उस पत्थर या कागज की नहीं है, कि जिस पर वह मूर्ति या चित्र बना है। मनुष्य वस्तुतः उन आदर्शों–गुणों की ही वन्दना–पूजा करता है जिसको वह मूर्ति या चित्र में स्थापित करता है। यह पूजा आदर्श व गुण पूजा ही है। **नेत्रों के सामने जब ऐनक होती है तो क्या नेत्र उस ऐनक को देखता है? नहीं, ऐनक तो माध्यम है, वस्तु को अति स्पष्टता से देखने के लिए है। ऐसे ही अव्यक्त गुण एवं आदर्श को भी समझने के लिए मूर्ति व चित्र आवश्यक हैं, उपकारी हैं।**

प्रभु प्रतिमा अलक्ष्य आत्मस्वरूप को चाक्षुष प्रत्यक्ष के रूप में प्रगट करने का एक माध्यम है, जैसे कि पितृ भक्त पुत्र–परिवार उनकी तस्वीर के दर्शन के द्वारा उनके उच्च गुणों को स्मृति पटल में लाकर गुण प्राप्ति की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

भारत स्वतन्त्रता आंदोलन के काल में शहीद हुए देश भक्त नेताओं के स्टेच्यू, तस्वीर आदि को देखकर जिस तरह देश भक्ति, स्वतंत्रता एवं शूरवीरता की प्रेरणा प्राप्त की जाती है उसी तरह वीतराग परमात्म की सौम्य, प्रशान्त मुद्रा के दर्शन, पूजन, ध्यान से उनके जैसे ही जो उच्च गुण हमारे में अन्तर्निहित हैं, उन गुणों को प्रकट करने की दिव्य प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त की जाती है। कई प्रकार की विकृतियाँ एवं मलिनताओं से भरे हुए हमारे चित्त को निर्मल, निर्विकार बनाने का उत्तम मार्ग वीतराग भक्ति है, अरिहंत उपासना है।

साकार से निराकार की ओर

प्रभु की उपासना आत्म स्वरूप को, आत्म धर्म को प्राप्त करने का मुख्य अंग है। उपासना के लिए मूर्ति की नितान्त आवश्यकता रहती है। किसी भी निराकार वस्तु की उपासना मूर्ति यानि आकार के बिना असम्भव है। भगवान के प्रति श्रद्धा भक्ति तथा उनके अस्तित्व में विश्वास रखने के लिए मूर्ति एवं मूर्ति पूजा आवश्यक

है। यदि हम हमारे मन में निराकार ईश्वर की कल्पना करें तो भी वह साकार ही बनने वाली है जैसे कि श्री महावीर परमात्मा समवसरण में विराजमान होकर बारह पर्षदा के मध्य धर्म देशना दे रहे हैं तो यह कल्पना भी साकार ही होगी। जिसकी चित्रमय झलक हमारे मन मस्तिष्क में बने बिना नहीं रहेगी।

यह एक सर्वमान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि मानव स्थूल से सूक्ष्म की ओर अथवा साकार से निराकार की ओर बढ़ता है। मूर्ति पूजा के विधान में यही तथ्य निहित है। मनुष्य ने ईश्वरीय शक्ति की अनेक आकारों में और रूपों में कल्पना की है। उस कल्पना अथवा मानसिक भावना को किसी प्रतीक या आधार के द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। यथार्थ तत्त्व की अभिव्यक्ति के लिए ये प्रतीक एवं मूर्तियों का महत्त्व और उनकी उपयोगिता तब तक कम नहीं हो सकती जब तक कि परम तत्त्व को / परमात्म तत्त्व को प्राप्त करने की मनुष्य की निष्ठा सच्ची है। जब तक मूर्ति पूजा में निहित दृष्टिकोण सच्चा और शुद्ध है, लक्ष्य की ओर केन्द्रित है तब तक उसे मानव-जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता है। मूर्ति की कल्पना, निर्माण और प्रतिष्ठा के उद्देश्य ये हैं-

1. किसी स्मृति अथवा अतीत को जीवित रखने का प्रयत्न,

2. अव्यक्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा अथवा किसी अव्यक्त भाव को साकार बनाने की इच्छा,

3. आराध्य का दर्शन, गुणगान, स्मरण, वन्दन, पूजन और ध्यान करके उनके गुणों को सन्मुख रखते हुए स्वयं को वैसा बनाने का प्रयत्न।

मूर्ति का महत्त्व

अध्यात्म मार्ग में मूर्ति का सहारा सोने में सुगन्ध के समान है। अरिहंत भगवान की मूर्ति तो हमारे लिए अधिक उपकारी है। जरा सोचिये,-ध्यानावस्था में रहे हुए खुद भगवान को यदि हम वन्दन-नमस्कार करते, तो हमें क्या लाभ होता? वैसी अवस्था में न तो वे वाणी सुनाते, न आहार इत्यादि लेकर हमें कृतार्थ करते हैं और न अन्य किसी वस्तु की प्राप्ति हमें उनसे होती है उस समय तो वे मूर्तिवत् ही होते हैं उस अवस्था में जो भी लाभ हमें होता, वही लाभ उनकी मूर्ति को भावयुक्त वन्दन-नमस्कार कर प्राप्त किया जा सकता है।

भावना चाहे ध्यानस्थ भगवान के समक्ष (उपार्जित) की जाये या उनकी मूर्ति के समक्ष, दोनो अवस्थाओं में हितकारी ही है।

कहा जाता है कि मूर्ति तो जड़ पदार्थ है। जड़ को चेतन के समान समझना सरासर भूल है। जड़ मूर्ति में असली वस्तु सी क्षमता कहां संभव है? यदि यह संभव हो तो पत्थर के बीज उगाने से उग आते तथा पत्थर की बनी गाय, गाय की तरह दूध देती। जब हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि इनसे ऐसी पूर्ति कभी भी नहीं होती और कोई लाभ नहीं मिलता तो पत्थर की बनी हुई भगवान की मूर्ति से भी हम किसी भी प्रकार के लाभ की आशा नहीं कर सकते।

पत्थर की बनी गाय और वास्तविक गाय में कितना भारी अन्तर है उसे हम सभी अच्छी तरह से जानते हैं ! पत्थर की गाय दूध नहीं देती, घास नहीं खाती, रम्भाती नहीं, चलती फिरती नहीं, मरती भी नहीं ! इस तरह से हम देखते हैं कि गाय में और गाय की मूर्ति में काफी असमानता है, किन्तु उसमें समानता कौनसी है, यही चिन्तनीय है।

पत्थर के टुकड़े को गाय क्यों कहा? भेड़, बकरी या भैंस तो नहीं कहा? पत्थर के और भी हजारों टुकड़े देखते हैं उन्हें तो गाय नहीं कहते। निश्चय ही वह उसके आकार प्रकार का प्रभाव है। कलाकार ने उस पत्थर में एक ऐसी जीवन्तता पैदा कर दी की बुद्धिमान व्यक्ति को भी उसे गाय शब्द से संबोधित करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इससे भी आगे अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि आकार प्राप्त इस पत्थर के टुकड़े ने कुछ क्षणों के लिए सम्पूर्ण संसार से हमारे ध्यान को हटाकर केवल गाय पर ही केन्द्रित कर दिया। यही मूर्ति की महान विशेषता है, यही असली रहस्य है। प्रत्येक मूर्ति हमारे मन-मस्तिष्क पर अपना-अपना असर करती है। हज़ारों कुतर्कों पर यह एक तथ्य भारी है।

मूर्ति के द्वारा असली वस्तु याद आती है और असली वस्तु की याद आते ही उसके गुण दोष स्वतः ही हमारे मस्तिष्क में चकराने लगते हैं। इन गुण दोषों से ओत-प्रोत होना या न होना हमारी इच्छा और शक्ति पर निर्भर है। पर एक बार तो हमारा ध्यान उस ओर चला ही जाता है। तथ्य यही है कि गाय की मूर्ति को देखकर गाय की विशेष रूप में याद हो आती है, उसकी उपयोगिता पर भी ध्यान जाता है और उसके सम्बन्ध में कई तरह के विचार उत्पन्न होते हैं। ऐसा होता है या नहीं, इसका निर्णय तो हम स्वयं ही कर सकते हैं।

पूर्वोक्त शंका में जो द्रव्य वस्तुओं की प्राप्ति के विषय में कमी महसूस की गई थी, वह **द्रव्य वस्तुओं की प्राप्ति तो मूर्ति से सम्भव नहीं परन्तु मूल वस्तु के गुण दोषों के स्मरण का मन के साथ गहरा सम्बन्ध है। 'द्रव्य वस्तुओं की अप्राप्ति' को प्रधान लक्ष्य के रूप में आगे रखकर वस्तु के स्वरूप को विशेष रूप से याद दिलाने वाली मूर्तिकला के महान महत्त्व को न समझना ही अपने विवेक की एवं बुद्धिमता की बड़ी कमी है। अरिहंत परमात्मा की प्रशांत, वीतराग मुद्रायुक्त मनोहारी मूर्ति हमें परम लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत सहायता पहुँचा सकती है। यदि हम उसकी उपयोगिता-उपकारिता को समझ कर उसे प्रयोग में लें तो हमें अपूर्व लाभ मिल सकता है।** उपयोगिता न समझना ही इस तरह की शंका का मूल कारण है।

मूर्ति शुभावह निमित्त कारण

सम्यग्दर्शन प्राप्त प्रत्येक श्रावक श्राविका का अन्तिम ध्येय जन्म-मरण आदि दुःखों से छुटकारा पाकर, मोक्ष प्राप्त करना है। इस श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति हेतु वे यथासम्भव प्रयत्न भी करते हैं। इस महान कार्य की पूर्ति के लिये सबसे पहले शुभावह निमित्त कारण की आवश्यकता होती है। इससे ही चित्त की चंचलता दूर होकर एकाग्रता आती है।इतना ही नहीं इन्द्रियों का दमन और कषायों पर विजय भी मिलती है। वह निमित्त कारण संसार भर में मुख्यतः प्रभु की, जिनेश्वर भगवान की शान्त मुद्रामय मूर्ति ही है। मूर्ति चाहे पाषाण की हो, धातु की हो, काष्ठ की हो या रत्नों की हो लेकिन भक्त (उपासक) का लक्ष्य तो मूर्ति द्वारा परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का चिन्तवन करना है।

साकार की पूजा ही उचित

कल्पना करके या साक्षात् मूर्ति बनाकर उपासना करना, दोनों का ध्येय तो एक ही है। कल्पित मूर्ति का स्वरूप क्षणिक होता है, जबकि प्रतिष्ठित मूर्ति मंदिर में स्थायी रूप में विराजमान रहती है। अतः दृश्यमान मन्दिर में जाकर प्रभु की भावपूर्ण हृदय से पूजा-अर्चना करके आत्म कल्याण करें, यही उचित है।

पूजा सहज प्रवृत्ति है

सुदेव-सुगुरु-सुधर्म की उपासना ही मोक्ष मार्ग का साधन है। श्री जिनेश्वर देव, निर्ग्रन्थ गुरुओं और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म को श्रद्धापूर्वक, विनय सहित

मानना ही सम्यकत्व है।श्री जिनेश्वर देव की आराधना जिस प्रकार उनके नाम स्मरण से होती है, उनके गुण स्मरण से होती है, उनके पूर्वापर के चरित्रों के पठन-श्रवण से होती है, उनकी भावमय भक्ति से होती है, उसी प्रकार उनकी मूर्ति पूजा से भी होती है। श्री जिनेश्वरदेव की पूजा कोई कल्पित वस्तु नहीं है। वह तो भक्त आत्मा से सहज प्रवाहित अनिवार्य प्रवृत्ति है।

ङ्गनामाकृति-द्रव्यभावैः पुनतस्त्रिजगज्जनम्।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मि-न्नर्हतः समुपास्महे।।1।।'

इस श्लोक (पद्य) में परम उपकारी कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य भगवन्त श्रीमद् हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ने बतलाया है कि-

ङ्गसभी कालों में तथा सभी क्षेत्रों में नाम, आकृति (स्थापना), द्रव्य और भाव इन चारों स्वरूपों द्वारा तीनों लोकों को पवित्र करने वाले श्री वीतराग जिनेश्वरदेव की हम उपासना करते हैं।'

मूर्त द्वारा अमूर्त का ज्ञान

किसी भी वस्तु के गुण धर्म की पहचान बहुधा उसके रूप-रंग के आधार पर होती है। मूर्त पदार्थों के गुण-धर्म भी प्रायः अमूर्त (दिखाई न देने वाले) होते हैं। फिर अमूर्त पदार्थों के गुण-धर्म पूर्ण रूप से अमूर्त होना स्वाभाविक है। अमूर्त पदार्थों के गुण-धर्मों का स्वरूप उनके नाम और आकार के द्वारा ही जान सकते हैं। अमूर्त या मूर्त दोनों में से एक भी पदार्थ के सभी गुण-धर्मों और उसके स्वरूप का ज्ञान छद्मस्थ आत्माओं को उनके नाम और आकार के आलंबन बिना जरा भी नहीं हो सकता।

''ठीक इसी तरह निराकार जिनेश्वर देव की आराधना, भक्ति भी नाम और आकार के बिना नहीं हो सकती।'' श्री जिनेश्वर देव के गुणों का ज्ञान भी हमें उनके नाम और आकार के आलम्बन बिना नहीं हो सकता। जब हम प्रभु-पूजा करते हैं। उनका नाम लेते हैं। तब उनका वीतरागमय, सौम्य, प्रशान्त, स्वरूप हमारे सन्मुख होता है। नाम और आकृति हमें श्री जिनेश्वर देव के गुणों का प्रत्यक्ष ज्ञान कराते हैं। प्रभु प्रतिमा के दर्शन से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का भान होता है। वीतराग प्रभु की मूर्ति हममें वीतरागता का भाव जागृत करती है।

नाम स्मरण व प्रभु दर्शन

जब हम श्री जिनेश्वर देव के नाम के महत्त्व को मान लेते हैं तो आकार का महत्त्व भी मानना ही होता है। प्रभु का नाम केवल उनके गुणों को लक्ष्य करके नहीं होता वरन उनके देहाकार को लक्ष्य करके भी होता है। यही कारण है कि प्रभु के अनेक नाम उनके अलग-अलग गुणों को व्यक्त करते हैं।

जिस प्रकार प्रभु का स्मरण कल्याणकारी है ठीक उसी तरह उनका स्वरूप दर्शन भी अधिक कल्याणकारी है। ऐसा जानने के बाद प्रत्येक श्रावक-श्राविका का कर्तव्य हो जाता है कि वह श्री जिनेश्वर देव के दर्शन-पूजन-वन्दन का कार्य नित्य प्रति अनिवार्य रूप से करें। प्रभु का नाम स्मरण व प्रभु प्रतिमा के दर्शन से हममें वे सभी गुण उत्पन्न होते हैं। प्रभु प्रतिमा पूजन मूर्त द्वारा अमूर्त की आराधना का सर्वोत्तम साधन है। बिना प्रभु-प्रतिमा का आलम्बन लिये हम अपने आत्मस्वरूप को जान नहीं सकते।

'चैत्यवन्दनतः सम्यक् शुभो भावः प्रजायते।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वस्ततः कल्याणमश्नुते।।' -पू. आ.हरिभद्रसूरि

चैत्य यानि जिन मंदिर या जिन बिम्ब। श्री जिनेश्वर देव की मूर्ति को सम्यक् प्रकार वन्दन करने से प्रत्यक्ष शुभ भाव पैदा होते हैं। शुभ भाव से सभी कर्मों का क्षय होता है। कर्मों के क्षय होने के बाद ही पूर्ण कल्याण की प्राप्ति होती है।

मंदिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा का प्रयोजन

प्रतिष्ठा वह संस्कार है, जिसके द्वारा आराध्य पुरुष अथवा वस्तु की महत्ता तथा प्रभावकता को मान्य किया जाता है। इसे इस प्रकार और भी अधिक स्पष्ट किया जा सकता है । साकार अथवा निराकार मूर्ति में विधिपूर्वक आराध्य के गुणों का न्यास किया जाता है, उसे ही प्रतिष्ठा कहते हैं। वह मूर्ति में जिनदेव के गुणों की स्थापना रूप है। धर्म का कारण होने से जिनदेव की अथवा अन्य गुणों की स्थापना करना योग्य है। इसमें या तो गुणी की प्रधानता होती है, गुण गौण रहते हैं, अथवा गुणों की ही प्रतिष्ठा होती है, गुणी गौण रहता है। प्रतिष्ठा द्वारा मूर्ति में जिनदेव या उनके गुणों का न्यास होने पर साधक अपने मानस नेत्रों द्वारा उन्हें वहाँ देखता है। आत्मा के समस्त चैतन्य को अपनी प्रशान्त मुद्रा से आकर्षित करने वाले भगवान की प्रतिमा को देखते हुए भक्त के नेत्र उसके पाषाण रूप के दर्शन नहीं करते, वरन् उसके लोकोत्तर व्यक्तित्व और गुणों के ही दर्शन करते हैं। **वस्तुतः विधिसम्मत स्थापनाओं से निर्मित देव-प्रतिमा को पाषाण नहीं कहा जा सकता।** प्रतिमा के पूज्य आसन पर प्रतिष्ठित होने वाली मूर्ति को मन्त्रों से प्रतिष्ठा-विधि से लक्षणा-नुसार बनाए गए मन्दिर में विराजमान किया जाता है और उसमें देवत्व की भावना का विन्यास किया जाता है। मूर्ति में संस्कारों की भावना देने से देवत्व की प्रतिष्ठा होती है। इसलिए मंदिर में स्थापित प्रतिमा और बाजार में बिकने वाली मूर्तियों में अन्तर होता है।

एक पाषाण मूर्ति बनकर प्रतिष्ठित होने पर लोकपूज्य किस प्रकार बन जाता है, इसकी प्रक्रिया जाने बिना इसका महत्त्व समझ में नहीं आ सकता। पर्वत या खान से निकले उस सामान्य पाषाण में कितने लोगों की पवित्रता के संस्कारों ने प्रविष्ट होकर उसे असामान्य बना दिया, कितने मंत्रों ने संस्कार करके उसमें देवत्व का न्यास किया, इसे जानना आवश्यक है।

जैसे एक कागज का टुकड़ा रिज़र्व बैंक की मोहर (छाप) प्राप्त करते ही कीमती नोट बन जाता है। उसी प्रकार शुद्ध वातावरण में शुद्ध भावना से मंदिर और मूर्ति की जो प्रतिष्ठा होती है, उससे मंदिर में समवसरण का न्यास होता है और मूर्ति में वीतराग अरिहंत और उनके गुणों का न्यास होता है। भक्त मंदिर और मूर्ति में इसी भाव के दर्शन करते हैं। सामान्य भवनों और बाजार की मूर्तियों की अपेक्षा प्रतिष्ठित मन्दिरों और मूर्तियों की विशेषता यही है कि उनमें व्यक्ति की निष्ठा और

श्रद्धा जागृत हो जाती है एवं प्रतिष्ठा का उद्देश्य यही है।

जिज्ञासा – यदि प्रतिमा की प्रतिष्ठा में प्राण (गुण) आरोपित किए जाते हैं तो उसमें मुहूर्त क्यों देखा जाता है ?

समाधान –

प्रभु प्रतिमा – दर्शन, वंदन मोक्ष मार्ग का साधन

भव्य मन्दिरों तथा उनमें विराजमान जिन प्रतिमाओं के दर्शन-पूजन से अपार लाभ है। श्री जिनेश्वर देव के दर्शन-पूजन करके लघुकर्मी भव्यात्माएँ सम्यग्-दर्शनादि आत्म गुणों को प्राप्त करती है। इसके बाद वे देशविरति, सर्व विरति आदि उच्च कक्षाओं को प्राप्त करती है। इस तरह सर्व-कर्म रहित बन कर वे मोक्ष के अव्याबाध सुख को प्राप्त करती है।

काल कार्य सिद्धी में विशेष रुप से सहायक बने इस हेतु ।

मूर्तिपूजा से लाभ

श्री जिनेश्वर देव की प्रतिमा की पूजा करने से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही तरह से अपार लाभ होता है। अप्रत्यक्ष लाभ तो अनुभव का विषय है। उसे दिखाना-लिखना सम्भव नहीं। लेकिन प्रतिमा पूजन से भूतकाल में असंख्य लोगों को अनेकानेक लाभ हुए।

1. श्री श्रीपाल राजा तथा सात सौ कोढ़ियों का अठारह प्रकार का कोढ़ उज्जैन नगर में श्री केसरिया नाथजी की मूर्ति के सामने, श्री सिद्धचक्र यंत्र के स्नान (प्रक्षाल) जल से दूर हो गया था। उसी के प्रभाव से उनकी काया कंचन जैसी बन गई थी वही केसरिया नाथ की प्राचीन प्रतिमा आज भी उदयपुर के पास केसरियाजी (धुलेवा-राजस्थान) तीर्थ में है।

   (देखिये श्रीपाल चरित्र)

2. जरासंध राजा ने कृष्ण महाराज की सेना पर 'जरा' (वृद्धावस्था) विद्या का प्रयोग किया था। इससे सभी सैनिक जरावस्था को पा गये थे, उसी समय 22वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान की आज्ञा से कृष्ण राजा ने अट्ठम का तप किया। धरणेन्द्र ने आकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु की मूर्ति दी (प्रस्तुत प्रतिमा पूर्व चौबीसी के श्री दामोदर तीर्थंकर के समय आषाढ़ी श्रावक ने बनाई थी) इस मूर्ति के प्रक्षाल के जल से 'जरा' अवस्था दूर हो गई। पुनः सारे सैनिक यथास्थिति को पा गये। वही प्रतिमा श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ के नाम से सारे भारत में विख्यात है। आज भी शंखेश्वर में जाकर हजारों व्यक्ति अट्ठम करके प्रभु की पूजा करके लाभ पाते हैं। (देखो हरिवंश चरित्र)

3. राजा रावण ने प्रथम अरिहंत पद की आराधना स्वरूप श्री अष्टापद तीर्थ पर विराजमान तीर्थंकर देव की मूर्तियों के समक्ष अबाध भक्ति कर तीर्थंकर नाम गौत्र बांधा, यह सर्व विदित है।

4. नवांगी टीकाकार श्री अभय देव सूरिजी का कोढ़ श्री स्तंभन पार्श्वनाथजी की मूर्ति के स्नान (प्रक्षाल) जल से चला गया था।

5. 'क्षीर द्वीप-सागर-पन्नति' और श्री हरिभद्रसूरिकृत 'आवश्यक सूत्र' की टीका के अनुसार जिन प्रतिमा के आकार की मछलियाँ समुद्र में होती है।

जिनको देखकर अनेक भव्य मछलियों को जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त होता है और सम्यक्त्व सहित व्रत धारण कर आठवें देवलोक में जाती है। इस प्रकार तिर्यंच जाति को भी जिन प्रतिमा के आकार मात्र के दर्शन से अलभ्य लाभ प्राप्त होता है, तो भगवान के दर्शन-पूजन से मनुष्य को अलभ्य लाभ प्राप्त हो, इसमें कोई संदेह नहीं है।

6. 'श्री महानिशीथ सूत्र' में फरमाया है कि उत्कृष्ट भाव से जिन मन्दिर बनवाने वाला बारहवें देवलोक में जाता है।

7. देवपाल राजा आदि श्रावकों ने श्री जिनेश्वर देव की प्रतिमा की आराधना से तीर्थंकर गौत्र बांधा, ऐसा उल्लेख विविध शास्त्रों में आता है।

8. अनार्य देश के निवासी श्री आर्द्रकुमार श्री जिनेश्वर प्रभु स्वामी की प्रतिमा के दर्शन से जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त कर वैराग्य दशा में लीन हुआ। (इसका वर्णन बारह सौ वर्ष पूर्व लिखित 'श्री सूयगडांग सूत्र' के दूसरे श्रुतस्कंध के छट्ठे अध्ययन की टीका में है।)

9. श्री महावीर देव के चौथे पट्टधर तथा श्री दशवैकालिक सूत्र के कर्ता श्री शय्यंभवसूरि को, जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा के दर्शन से प्रतिबोध प्राप्त हुआ, इस बात का उल्लेख कल्पसूत्र तथा दशवैकालिकसूत्र की निर्युक्ति एवं टीका में है।

10. श्री भगवती सूत्र के मूल पाठ में कहा है कि भाव पूर्वक श्री जिन मूर्ति का शरण लेने से कभी नुकसान नहीं होता है। तीर्थंकर के नाम तथा गौत्र सुनने मात्र से महापुण्य होता है। तो प्रतिमा में तो उनके नाम व स्थापना दोनों हैं। अतः प्रतिमा पूजन से विशेष पुण्य होता ही है।

11. टीकाकार भगवंत श्री हरिभद्रसूरिजी ने श्री आवश्यक-वृत्ति में बताया है कि-'प्रभु पूजा पुण्य का अनुबन्ध करने वाली तथा विपुल निर्जरा रूप फल को देने वाली है।'

12. श्री गौतम स्वामी की शंका निवारण करने के लिए भगवान महावीर स्वामी ने स्वयं कहा है कि जो व्यक्ति आत्मलब्धि से अष्टापद तीर्थ पर चढ़कर भरत महाराजा द्वारा बनवाई हुई जिन प्रतिमाओं का भाव पूर्वक दर्शन करेगा तो वह इसी भव मोक्ष जायेगा। इस बात का निश्यच करने के

लिये गौतमस्वामी अष्टापद पर चढ़े तथा यात्रा करके उसी भव में मोक्ष गये। (आवश्यक निर्युक्ति में इसका वर्णन है।)

13. चौदह पूर्वधर श्री भद्रबाहुस्वामी श्री आवश्यक निर्युक्ति में कहते हैं-

अकसिणपवत्तमाणं, विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो।
संसारपयणु-करणे, दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो।।1।।

अर्थ-देशविरति श्रावक को पुष्पादि के द्वारा द्रव्य पूजा अवश्य करना चाहिये। जैसे कुआँ खोदते समय श्रम होता है, प्यास बढ़ती है किन्तु कुएँ में पानी निकलने पर हमेशा के लिए प्यास का दुःख मिट जाता है। वैसे ही द्रव्य पूजा से भव भ्रमण खत्म होकर मोक्ष सुख की प्यास शांत हो जाती है।

उपरोक्तानुसार अनेकानेक मूल सूत्र तथा निर्युक्ति आदि के प्रमाणों से मूर्ति पूजा उत्तम फल देने वाली है, यह सिद्ध होता है।

प्रभु पूजन से दान-शील-तप-भक्ति आराधना

श्री जिनेश्वर देव की पूजा से पुण्य बंध तो होता ही है साथ ही कर्मक्षय रूप निर्जरा भी होती है। दोनों ही रूप में प्रभु पूजन से आराधक को लाभ मिलता है जैसे-

1. श्री जिनेश्वर देव की पूजन के समय अक्षत आदि चढ़ाने से आराधक को दान-धर्म का लाभ मिलता है।
2. श्री जिनेश्वर देव के पूजन के समय आराधक का मन विषय-विकारों से रहित रहता है जिससे शील धर्म का लाभ मिलता है।
3. श्री जिनेश्वर देव के पूजन के समय आराधक आहारादि का त्याग करता है यह तप रूप में लाभ हुआ।
4. श्री जिनेश्वर देव के पूजन के समय आराधक चैत्यवंदन करता है, स्तुति के रूप में जिनेश्वर का गुणगान करता है। इससे भाव धर्म का पालन होता है।

उक्त वर्णानुसार प्रभु की नित्य पूजा करने वाले आराधक को दान, शील, तप और भावना का अपार असीम लाभ प्रतिदिन मिलता है। यह पुण्यानुबंधी पुण्य है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन पूजा करने वालों को जो एक अदभुत आनन्द की प्राप्ति

होती है उसका वर्णन शब्दों में करना असंभव है। उसका अनुभव तो पूजा करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

ङ्गप्रभु पूजन से आठों कर्मों का क्षय’

श्री जिनेश्वर देव की पूजा से कर्मक्षय होते हैं। क्योंकि पूजा मन की शुद्धि का सरलतम साधन है।

1. पूजा करते समय आराधक चैत्यवंदन करता है, स्तुति गाता है, जिसमें उसके ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होने लगते हैं।
2. प्रभु प्रतिमा के भावमय दर्शन करने से दर्शनावरणीय कर्म का क्षय होता है।
3. प्रभु पूजा करते समय हम सभी जीवों के प्रति समभाव रखते हैं तथा जयणा (यतना) पूर्वक वर्तन करने से हमारे असाता वेदनीय कर्म का क्षय होता है।
4. प्रभु पूजा करते समय वीतराग श्री अरिहंत परमात्मा और श्री सिद्ध परमात्मा के गुणों के स्मरण करने मात्र से क्रमशः दर्शनमोहनीय व चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय होता है।
5. प्रभु पूजन के समय शुद्ध अध्यवसाय (भाव) की तीव्रता के फल स्वरूप अशुभ आयुष्य कर्म का क्षय होता है।
6. श्री जिनेश्वर देव की पूजा करते समय प्रभु का नाम लेने से तथा उनके निराकार अशरीरी स्वरूप का चिंतन करने से नाम कर्म का क्षय होता है।
7. श्री जिनेश्वर देव का पूजन-वंदन करने से नीच गोत्र कर्म का क्षय होता है।
8. श्री जिनेश्वर देव की पूजा में तन-मन-धन की शक्ति का सदुपयोग करने से वीर्यान्तराय आदि अन्तराय कर्म का क्षय होता है।

प्रभु पूजा अत्यन्त आवश्यक है

उक्त वर्णन से विदित होता है कि प्रभु पूजा आठों कर्मों का क्षय करने का श्रेष्ठतम व सरलतम साधन है। नित्य प्रति पूजन-वंदन करने वाला आराधक भव-भव में सुदेव, सुगुरु,सुधर्म स्वरूप जिनशासन को पाता है। जिनशासन को पाकर उत्तरोत्तर कर्मों के क्षय द्वारा कालान्तर में मोक्षगामी बनता है।

श्री जिनेश्वर देव का दर्शन–पूजन–वंदन अति आसान व सर्व सुलभ साधन है। इसे बच्चे, युवक व वृद्ध सभी स्त्री–पुरुष कर सकते हैं। इस लोक में आत्मकल्याण का श्रेष्ठतम साधन जिनेश्वर देव की पूजा–भक्ति ही है।

इस मार्ग से मुँह मोड़ना यानि आलस्य या प्रमादवश पूजा नहीं करना दर्शन–वंदन के अपार लाभ से स्वयं वंचित रह जाना और स्वयं के कल्याण से वंचित रह जाना ही है। इसलिये जैन कुल में जन्म लिये प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह प्रभु के दर्शन–पूजन करने के बाद ही अन्य कार्यों में लगे। अन्यथा वह दुर्लभबोधि को प्राप्त कर सकता है।

स्वयं के तथा अन्यों के कल्याण के इच्छुक महानुभावों को श्री जिनेश्वर देव के पूजादि अनुष्ठान में तत्काल जुट जाना चाहिये। यही आत्म कल्याण का उत्तम मार्ग है।

पूजा की तात्कालिक उपलब्धियाँ

1. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव के दर्शन, वंदन, पूजन करनेवाला व्यक्ति पाप से डरता है और अनीति अन्याय से बचने का निरन्तर प्रयत्न करता है। यदि भूल से अनीति अन्याय हो भी जावे तो वह दूसरे दिन मंदिर में प्रभु के सामने अन्तःकरण पूर्वक प्रायश्चित्त करके अशुभ कर्म की निर्जरा कर लेता है। यह एक सकारात्मक भय है।
2. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने वाला व्यक्ति चैत्यवंदन, स्तवन, भजन के रूप में प्रभु के गुणों का स्मरण करता है। जिससे उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है।
3. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने वाला व्यक्ति अल्प मात्रा में भी शुभ क्षेत्र में स्व–द्रव्य का व्यय करके, पुण्य बंध करता है।
4. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने वाला व्यक्ति तीर्थ यात्रा करने की शुभ भावना करता है। तीर्थ यात्रा पर जाता है जिससे उसके चित्त की निर्मलता और शरीर की स्वस्थता के साथ ही दान, शील, तप व भाव धर्म का विशेष लाभ प्राप्त करता है।
5. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने वाला व्यक्ति कार्य की व्यस्तता या रोगादि कारणों से किसी दिन पूजा नहीं कर पाता है तो भी उसके मन

में भावना तो पूजा कि ही बनी रहती है। यदि कोई महानुभाव मरणासन्न एवं रोग ग्रसित होते हैं तो भी मन में पूजा करने के शुभ भाव के कारण, उनको शुभ गति मिलती है। कहावत भी है कि– 'जैसी मति, वैसी गति'।

6. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने वाला व्यक्ति यह भावना भाने लगता है कि क्यों न मैं भी एक जिन मंदिर बनवाऊँ, कदाचित् मेरी शक्ति न हो तो कम से कम मैं एक जिन बिम्ब भरवाऊँ, यदि इतनी भी शक्ति न हो तो जहाँ कहीं जिन मंदिर, उपाश्रय आदि बनते हों उसमें अंशतः आर्थिक सहयोग देकर पुण्य अर्जित क्यों न करूँ? इस तरह व्यक्ति यथाशक्ति लाभ लेकर पुण्यानुबंधी पुण्य का भागी बनता है।

7. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव की भावपूर्वक विशेष रूप से पूजा करने वाला व्यक्ति अन्ततः सर्व विरति के ध्येय को प्राप्त करने वाला बनता है। यहाँ पर यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि प्रभु की पूजा करने वाले सभी व्यक्ति इसी भव में सर्व विरति के ध्येय को पा सके ऐसा नहीं भी बनता है परंतु परभव में उनके लिए सर्वविरति सुलभ बन जाते हैं।

8. प्रतिदिन श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने वाला व्यक्ति कम से कम पूजन आदि के समय, प्रमाद से तो बच ही जाता है।

जिन मंदिरों की आवश्यकता एवं उपयोगिता

आवश्यकता

श्री जिनेश्वर देव की भक्ति के लिये मंदिर आदि की आवश्यकता होती है। किसी भी शुभ प्रवृत्ति के लिये अलग स्थान होना आवश्यक है। जिस प्रकार विद्याध्ययन के लिये विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय आवश्यक होते हैं ठीक उसी प्रकार देवभक्ति, गुरुभक्ति या धार्मिक क्रिया (प्रतिक्रमण, पौषध, व्याख्यान) करने के लिये पृथक् स्थान होना चाहिये हम इन्हें मंदिर, उपाश्रय आदि के नाम से पहचानते हैं। यदि हम विद्या अध्ययन के लिये विद्यालय, चिकित्सा के लिये चिकित्सालय, ज्ञानार्जन हेतु पुस्तकालय की आवश्यकता अनुभव करते हैं तो देवपूजा के लिये देवालय भी अत्यन्त आवश्यक है। **जो महानुभाव मंदिरों की आवश्यकता नहीं मानते उनके हृदय में देव के प्रति भक्ति का अभाव होता है।** सच तो यह है कि जितने सांसारिक काम आवश्यक है, उससे असंख्य गुना आत्मकल्याण का काम आवश्यक है। आत्मकल्याण के काम में मंदिर, उपाश्रय देवालय साधन रूप में है।

जिनके हृदय में श्री जिनेश्वर देव की उपासना करने का थोड़ा सा भी भाव होता है, वे मनोहर देवालयों की आवश्यकता को निःसंदेह स्वीकार करते हैं।

उपयोगिता

जिस गांव, कस्बे या नगर में जिन मंदिर होते हैं, वहाँ साधु-साध्वी का आवागमन सुलभ एवं सम्भावित रहता ही है। यह कभी नहीं मानना चाहिये कि मुनिराजों का विहार निरूद्देश्य होता है। सच तो यह है कि ये जंगम तीर्थ भी वहीं विचरण करते हैं जहाँ स्थावर तीर्थ विद्यमान होते हैं। प्राचीन काल से यह विहार करने की शास्त्रीय परम्परा रही है।

जिन-शासन के आचार्य भगवन्तों, साधु-मुनिराजों को श्रावकों के वैभव से, उनकी समृद्धि से कोई मतलब नहीं होता। इसलिए यह नहीं मान लेना चाहिये कि जिन क्षेत्रों में भौतिक समृद्धि वाले श्रावक बड़ी संख्या में रहते होंगे उन्हीं क्षेत्रों में साधु-साध्वीयों का आवागमन ज्यादा होता होगा। पूज्य आचार्य भगवंतों का चातुर्मास प्रायः वहीं होता है जहाँ जिनेश्वर देव की भक्ति के लिए अधिक संख्या में

सुन्दर विशाल चैत्यालय हों। कल्पसूत्र की टीका में भी ऐसा ही वर्णन है। ऐसे क्षेत्रों में सुश्रावकों की बहुलता होती है साथ ही वहां संयम की सुरक्षा, वृद्धि, तप, जप व ज्ञानार्जन उत्तम रीति से हो पाता है। साधु भगवंतों की सुलभता का प्रमुख साधन यदि कोई है तो वह जिनेश्वर देव की भक्ति के लिए पूर्वजों द्वारा निर्मित एवं नवनिर्मित जिन मंदिर ही है। मंदिरों के अभाव में जंगम तीर्थ के दर्शन तो दुर्लभ रहते हैं और यदि आचार्य भगवंत साधु-साध्वीगणों का समागम न मिले तो सुपात्र दान, जिनवाणी श्रवण, व्रत पच्चक्खाण, तप, जप, अनुष्ठान का लाभ भी जीवन भर नहीं मिलता। इतना ही नहीं वरन् सम्यग् दर्शन; देश विरति आदि गुणों के लाभ से हम वंचित रह जाते हैं। इससे भी बड़ी हानि यह होती है कि साधर्मिक भक्ति आदि सम्यक्त्व प्रदान करने वाले आचरण का अभ्यास ही नहीं रहता। सार रूप में यह एक स्थापित जैन मंदिर में रही वीतराग की प्रतिमा हमें आत्म स्वरूप का भान कराती है और जब हमें आत्मस्वरूप का भान हो जाता है तब हम उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

जिनमंदिरः धन सद्व्यय का साधन

जैनधर्म की भावना को बनाये रखने के लिये मंदिरों की जिस प्रकार से आवश्यकता है। ठीक उसी प्रकार परिग्रह की ममता कम करने के लिए भी मंदिरों की उपयोगिता है। मंदिर ही वे स्थान हैं जहाँ व्यक्ति अपने धन का सदुपयोग कर सकता है। पुण्य से उपार्जित चंचल लक्ष्मी के सद्व्यय के लिए जिन मंदिर आवश्यक है। लोभ और परिग्रह भावना से मुक्ति पाने के लिए तथा भावी जीवों के कल्याण के लिए मंदिरों के नवनिर्माण तथा जीर्णोद्धार आदि के कार्यों में धन व्यय करना शुभ कर्म बंध का कारण बनता है।

जिनेश्वर प्रभु की पूजा में हिंसा नहीं

कुछ महानुभाव स्व-बुद्धि से तर्क कर बैठते हैं कि जिन पूजा में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय के जीवों का विनाश होता है इसलिये पूजा नहीं करनी चाहिए। लेकिन ऐसी विचारणा गलत है। संसारी जीवों को ऐसी हिंसा तो प्रायः कदम-कदम पर लगती ही रहती है। लेकिन ज्ञानियों का कथन है कि-'विषय कषायादि की प्रवृत्ति करते हुए अन्य जीवों को हानि प्राप्त होवे उसी का नाम हिंसा है।' विषय-कषायादि की प्रवृत्ति बिना होने वाला प्राणव्यपरोपण आदि हिंसा नहीं है। यदि ऐसा हो तो साधर्मिक भक्ति, कबूतर को दाने, गाय को घास दान, पुस्तक

छपवाना आदि कोई भी प्रवृत्ति नहीं कर सकते क्योंकि इनमें भी जीव वध तो समाया हुआ ही है।

द्रव्य हिंसा में होने वाली स्थावर जीवों की हिंसा भावहिंसा नहीं है। क्योंकि आत्मगुणों की वृद्धि रूप भाव दया का वह कारण है और भावदया मोक्ष का कारण है। जिनागमों में द्रव्यहिंसा को भावहिंसा का कारण माना है। वह विषय-कषाय के निमित्त से होने वाली हिंसा है। परन्तु प्रभुगुण का बहुमान करने वाले व्यक्ति को पुष्पपूजा के समय होने वाली स्वरूप हिंसा भावहिंसा का कारण न होने से अनुबन्ध हिंसा नहीं है। अतः आत्मार्थियों को प्रभु पूजा भावोल्लासपूर्वक करना चाहिए। आ. हरिभद्रसूरिजी ने इसे स्वरूप हिंसा कहा है, क्योंकि मूल में इसमें हिंसा नहीं होती

अगर जिनेश्वर देव की पूजा के कार्य में जीव हिंसा है तो गुरु भक्ति, शास्त्र श्रवण आदि कार्यों में भी हिंसा होगी। लेकिन इसमें उद्देश्य जीव हिंसा का न होकर गुरुभक्ति, शास्त्र श्रवण आदि का होने से इसे किसी भी दशा में हिंसा का कार्य नहीं मान सकते। इसी तरह जिनेश्वर देव की पूजा में भी उद्देश्य जिन भक्ति का होने से उसमें हिंसा की प्रवृत्ति मानना कदापि उचित नहीं।

तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता पूर्वधर आ. उमास्वातिजी महाराज फरमाते हैं कि-

देहादि णिमितंपि हु जे, कायवहम्मि तह पयट्टंति।
जिणपूआ कायवहम्मि, तेसिमपवत्तणं मोहो।।45।।

भावार्थ स्वरूप हम यह समझ सकते हैं कि शरीर, व्यापार खेती आदि सांसारिक कार्यों में तथा संत-सतियों की जन्म जयन्तियाँ, श्मशान यात्रा, किताबें छपवाना, फोटो छपवाना, मर्यादा महोत्सव, दीक्षा महोत्सव, चातुर्मास में वाहन द्वारा संत सतिओं के दर्शनार्थ जाना, बड़े-बड़े स्थानक, सभा भवन, समता भवन बनवाना आदि धार्मिक कार्यों में हिंसा करते ही हैं।

अब आईए ! हम समकित और मोक्ष देनेवाली जिनपूजा करें।

जिनेश्वर देव की पूजा सर्वविरति दायक

यह मान्य सिद्धान्त है कि जिन गुणों की ओर मनुष्य की अत्यन्त श्रद्धा होती है। वह उन गुणों को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। जो जीवात्मा मोक्ष की इच्छा रखता है, उसे सर्व विरति के लक्ष्य की तरफ बढ़ना होता है। कारण

यह है कि सर्वविरति के बिना मोक्ष नहीं मिलता। सर्वविरति के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शुभ अध्यवसाय करने पड़ते हैं। जिनेश्वर देव की पूजा एक शुभ अध्यवसाय ही है। असंख्य काल के कर्मों की निर्जरा का साधन है। ऐसी निर्जरा से आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होने लगता है। आत्मा क्षायिक गुणों को प्राप्त करती है।

गुण प्राप्त होने पर गुणवान के वचनों के प्रति श्रद्धा बढ़ती है। यह श्रद्धा जैसे-जैसे तीव्र होता है, वैसे-वैसे गुणीजनों के कहे हुए वचनों के अनुसार आचरण करने की इच्छा बलवती होती है। इसी का नाम सर्वविरति है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जिनेश्वर देव का पूजन सर्वविरति के ध्येय का तथा अन्ततः मोक्ष का साधन है।

यहाँ पर यह ध्यान रखना है कि श्री जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा को पूजने वाले सभी लोग उसी भव में सर्वविरति के ध्येय को प्राप्त कर लेंगे, ऐसा सम्भव नहीं है।

सर्वविरति अंगीकार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उसी भव में मोक्ष प्राप्त नहीं होता तो भी सर्वविरति की आराधना निष्फल नहीं मानी जाती। इस तरह कई भवों तक विराधना से बचने तथा आराधना का सम्पादन करने से ही सर्वविरति भवांतर में मोक्ष प्रदान कराती है। इसी प्रकार अविधि से बचता हुआ और विधि को साधता हुआ, द्रव्य पूजा करने वाला भवांतर में आसानी से सर्वविरति को पा सकता है। इसका कारण यह है कि प्रभु पूजा करने वाला प्रभु की वीतरागता के गुण की पूजा करता है। भक्त भगवान का पूजन सर्वविरति आदि उत्कृष्ट गुणों के प्रति श्रद्धा रखकर करता है। इसीलिये भवांतर में तो सर्वविरति पा ही लेता है।

प्राचीन जिन मंदिर व मूर्तियों की विद्यमानता

मूर्ति–पूजा अनादिकाल से चली आ रही है। आज भी सैकड़ों वर्ष पूर्व के मूर्ति पूजा के पाठ व मूल सूत्र है तथा इतने ही वर्ष पुराने मंदिर तथा मूर्तियाँ मौजूद है। इनकी प्राचीनता को पुरातत्त्व वेत्ताओं ने भी माना है–

प्राचीन मन्दिरों और मूर्तियों के कितने ही शास्त्रीय प्रमाण व तीर्थ वर्तमान में जो विद्यमान है, उनमें से कुछ ये हैं–

1. भरत चक्रवर्ती ने श्री अष्टापद पर्वत पर चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ, उनके वर्ण, लंछन तथा शरीर के आकार के अनुसार स्थापित करवाई थी। (आवश्यक निर्युक्ति में इसका वर्णन है)

2. राधनपुर के पास में शंखेश्वर गांव में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ की मूर्ति गत चौबीसी के श्री दामोदर नाम के तीर्थंकर के समय आषाढ़ी श्रावक द्वारा बनवाई हुई प्रकट प्रभावी देवाधिष्ठित वह प्रतिमा आज भी मौजूद है।

3. भगवान महावीर देव के निर्वाण से 250 वर्ष बाद आचार्य आर्य सुहस्ति सूरीश्वरजी द्वारा प्रतिष्ठित श्री अवन्ती सुकुमाल की स्मृति में उनके पुत्र द्वारा भराई गई पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा अवंती पार्श्वनाथ के नाम से आज भी उज्जैन में क्षिप्रा नदी के निकट (भूतकाल के महाकाल वन में) स्थित हैं। यह प्रतिमा काल क्रम से भूमिगत हो गई थी। विक्रम संवत् प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य के समय प्रभावक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकरजी ने कल्याण मंदिर स्तोत्र की रचना द्वारा उसे पुनः प्रकट की।

4. आन्ध्रप्रदेश के हैद्राबाद के पास कुलपाक गाँव में भरत महाराजा के समय में भरवाई हुई श्री ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा जो समय के प्रभाव से मंदिर सहित दब गई थी। कुछ ही समय पूर्व प्रकट हुई है। प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं। यह प्रतिमा भी देवाधिष्ठित है। लोग इसे माणिक्य स्वामी की प्रतिमा कहते हैं।

5. श्रीपाल राजा और मयणा सुन्दरी ने जिस केसरियानाथजी (आदीश्वर प्रभुजी) की प्रतिमा के सम्मुख आराधना की थी। वही प्रतिमा आज उदयपुर के पास केसरियानाथ तीर्थ (धुलेवा राजस्थान) में है। यह प्रतिमा लाखों वर्ष पुरानी है।

6. राजा रावण के समय निर्मित प्रतिमा श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथजी की आकोला (महाराष्ट्र) में है।
7. मारवाड़ के नांदिया गांव और दियाणाजी गांव में श्री महावीरस्वामी की हयाति (मौजूदगी) में बनी मूर्ति स्थापित की हुई है, जिसको जीवंत स्वामी की प्रतिमा कहते हैं।
8. जोधपुर के पास ओसियाँ नगरी में श्री महावीरस्वामी की प्रतिमा श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा वीर निर्वाण के 70 वर्ष बाद स्थापित की हुई प्रतिष्ठित की हुई है जिसे 2434 वर्ष हो गये हैं।
9. कच्छ प्रदेश में भद्रेश्वर तीर्थ में भव्य और अति प्राचीन जिनालय है। इस तीर्थ के जीर्णोद्धार के समय प्राप्त ताम्रपत्र से विदित हुआ है कि यह मंदिर वीर संवत् 23 में बना था। इस प्रकार यह तीर्थ लगभग ढाई हजार वर्ष प्राचीन है, सुधर्मास्वामीजी द्वारा भगवान की अंजनशलाका हुई थी और प्रतिष्ठा कपिल केवली ने करवाई थी।
10. भरूच शहर (गुजरात) में श्री मुनिसुव्रतस्वामी के समय की उनकी मूर्ति है जिसे लाखों वर्ष हो गये हैं।
11. संप्रति राजा द्वारा भरवाई हुई वीर सं. 290 के बाद की अनेक प्रतिमाएँ लगभग सभी स्थानों पर मिलती हैं।
12. इसी चौबीसी के **श्री नेमिनाथ भगवान** के शासन से 2222 वर्ष पहले गोड़ देशवासी आषाढ़ नाम के श्रावक ने तीन प्रतिमाएँ भरवाई थी। उनमें से एक खंभात में श्री स्तंभन पार्श्वनाथ की, दूसरी पाटन शहर में व तीसरी पाटन के पास चारुप गाँव में आज भी विद्यमान है।

इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों पर सैकड़ों वर्ष पुरानी जिन प्रतिमाएँ हैं–

1. श्री सम्मेतशिखरजी तीर्थ पर अनेक जिनप्रासाद बने हैं।
2. श्री गिरनारजी पर मंदिर तथा सैकड़ों जिन प्रतिमाएँ हैं।
3. श्री सिद्धाचलजी पर अनेक मंदिर व हजारों जिन प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।
4. श्री आबू के मंदिरों में अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।
5. श्री तारंगाजी तीर्थ में गगनचुम्बी मंदिर व श्री अजितनाथस्वामी की भव्य व विशाल प्रतिमा है।

भारत के कोने-कोने में विशेषतः गुजरात, कच्छ, काठियावाड़, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, बिहार, उत्तरप्रदेश, आन्ध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु में अनेक जिन मंदिर तथा मूर्तियाँ विराजमान हैं। यह सब श्री जिन पूजा की प्राचीनता और शास्त्रीयता का जीवित प्रमाण है। यदि मूर्ति पूजा का विधान न होता तो उपरोक्तानुसार जिन मंदिरों के निर्माण में करोड़ों अरबों रूपयों का खर्च क्यों होता?

ठाणांग सूत्र की टीका में श्रावक को 1. जिन प्रतिमा, 2. जिन मंदिर, 3. शास्त्र, 4. साधु, 5. साध्वी, 6. श्रावक और 7. श्राविका इन सात क्षेत्रों में धन खर्च करने का विधान बतलाया है। इसके अतिरिक्त अन्य सूत्रों में भी ऊपर लिखे सात क्षेत्र श्रावक के लिए सेव्य बताये हैं।

एक महत्त्व का तीर्थ-भद्रेश्वरजी

भद्रेश्वर तीर्थ- भद्रेश्वर तीर्थ आर्य जंबूस्वामी के समय में अस्तित्व में आया।

1. ठ. देवचंद्रीयश्रीपार्श्वनाथदेवस्येतो....(23)

* वाच्य अक्षरों के आधार पर इसका अर्थ ऐसा किया जाता है.... 'वणिक देवचंद्र द्वारा निर्मित प्रभु श्री पार्श्वनाथ का मंदिर जिसके निर्माण के तेईस वर्ष पूर्व भगवान श्री महावीर स्वामी विद्यमान थे।'

आचार्य श्री विजयानंदसूरिजी महाराज इस तीर्थ के संबंध में लिखते हैं कि मंदिर से संबंधित कुछ पुराने लेखों में तथा कच्छ की भूगोल में भी '**वीरात् 23 वर्षे इदं चैत्यं संजातमिति**' ऐसा उल्लेख मिलता है। इस पर से निश्चित होता है कि वीर निर्वाण संवत् 23 में देवचंद्र नामक श्रावक ने भद्रेश्वर में भगवान श्री पार्श्वनाथ के मंदिर का निर्माण किया। इसमें प्रतिष्ठित की गई मूर्ति का वासक्षेप गणधर श्री सुधर्मास्वामी अथवा उनके शिष्य जंबूस्वामी के हाथों हुआ होगा।

ऐसा ही एक प्राचीन शिलालेख रा. ब. श्री गौरीशंकर ओझा को बड़ली के किसी साधु के पास से प्राप्त हुआ है जिसे उन्होंने अजमेर के संग्रहालय में रखवाया है। यह तीर्थंकर भगवान की मूर्ति के नीचे की गद्दी का भाग है। इसमें खरोष्ट्री लिपि में '**वीराय भगवते... य चतुर. सितिय.... काये सालिमालिनि.... रं निविट्ठ मज्झिमिके।**' इस प्रकार लिखा हुआ है। अर्थात् वीर निर्वाण के बाद 84 वर्ष के बाद यह शिलालेख लिखा गया है।

मूर्ति पूजा और जैनागम

(1)

श्री महाकल्पसूत्र में एक स्थान पर श्री गौतमस्वामी पूछते हैं–

से भयवं तहारूवे समणे वा माहणे वा चेइयघरे गच्छेज्जा?

हंता! गोयमा! दिणे दिणे गच्छेज्जा। से भयवं जत्थ दिणे न गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा? गोयमा! पमायं पहुच्च तहारुवे समणे वा माहणे वा जो जिणघरं न गच्छेज्जा तओ छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा।

से भयवं समणोवासगस्स पोसहसालाए पोसहसालाए पोसहिए पोसहबंभयारी किं जिणहरं गच्छेज्जा?

हंता! गोयमा ! गच्छेज्जा

से केणट्ठेणं गच्छेज्जा?

गोयम ! णाणदंसणचरणट्ठाए गच्छेज्जा।

जे केई पोसहसालाए पोसहबंभयारी जओ जिणहरे न गच्छेज्जा तओ पायच्छित्तं हवेज्जा?

गोयमा! जहा साहू तहा भाणइयव्वं छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा।

'हे भगवन् ! तथारूप श्रमण अथवा माहण तपस्वी चैत्यघर अर्थात् जिनमंदिर में जावें?' भगवान् कहते हैं – 'हाँ गौतम! सर्वदा प्रतिदिन जावें।'

गौ.–'हे भगवन् ! यदि यह नित्य नहीं जाए तो प्रायश्चित्त आता है?'

भ.–'हाँ गौतम ! प्रायश्चित्त आता है।'

गौ. – 'हे भगवन्! क्या प्रायश्चित्त आता है?'

भ. – 'हे गौतम ! प्रमाद के वश होकर तथा रूप श्रमण अथवा माहण यदि जिनमंदिर नहीं जावे तो छट्ठ (दो उपवास) का प्रायश्चित्त आता है अथवा पाँच उपवास का प्रायश्चित्त होता है।'

गौ. – 'हे भगवन् ! जिनमंदिर क्यों जाते हैं?'

भ. – 'हे गौतम ! ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की रक्षा के लिये जाते हैं।'

गौ. – 'हे भगवन्! यदि कोई श्रमणोपासक श्रावक पौषधशाला में पौषध में रहते हुए ब्रह्मचारी जिनमंदिर नहीं जावे तो प्रायश्चित्त आता है?'

भ. – 'हाँ गौतम! प्रायश्चित्त आता है। हे गौतम ! जिस प्रकार साधु को प्रायश्चित्त वैसे ही श्रावक के लिए भी प्रायश्चित्त समझना। वह प्रायश्चित्त छट्ठ अथवा पाँच उपवास का होता है।'

(2)

श्री महाकल्प सूत्र

'तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव तुंगीयाए नयरीए बहवें समणोवासगा परिवसंति संखे, सयगे, सिलप्पवाले, रिसिदत्ते, दमगे पुक्खली, निबद्धे, सुपइट्ठे, भाणुदत्ते, सोमिले, नरवम्मे, आणंदकाम–देवाइणो जे अन्नत्थ गामे परिवसंति इड्ढा दित्ता विच्छिन्नविपुलवाहणा जाव लद्धट्ठा, गहियट्ठा चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्ण–मासिणसु पडिपुन्नं पोसहं पालेमाणा निग्गंथाण य निग्गंथीण य फासुएणं एसणिज्जेणं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव पडिलाभेमाणा चेइयालएसु तिसंज्झं चंदणपुप्फ – धूव–वत्थाइहिं अच्चणं कुणमाणा जाव विहरंति से तेणट्ठेणं गोयमा! जो जिणपडिमं न पुएइ सो मिच्छदिट्ठि जाणियव्वो, मिच्छदिट्ठिस्स नाणं न हवइ, चरणं न हवइ, मुक्खं न हवइ, सम्मदिट्ठिस्स नाणं चरणं मुक्खं च हवइ, से तेणट्ठेण गोयमा! सम्मदिट्ठिसड्ढेहिं जिणपडिमाणं सुगंधपुप्फचंदणविलेवणेहिं पूया कायव्वा।'

'तुंगीया, सावत्थी (श्रावस्ती) आदि नगरों के श्रावक शंखजी, आनंद, कामदेव आदि ने त्रिकाल श्री जिनमूर्ति की द्रव्यपूजा की है तथा जिन पूजा करने वाला सम्यग्दृष्टि है, नहीं करने वाला मिथ्यादृष्टि है तथा पूजा मोक्ष के लिये की जाती है।' ऐसा उपर्युक्त पाठ श्री महाकल्प सूत्र में है जिसका भावार्थ निम्नानुसार है–

'उस समय तुंगीया नगरी में बहुत से श्रावक रहते थे–1.शंख, 2. शतक, 3. सिलप्पवाल, 4. ऋषिदत्त, 5. द्रमक, 6. पुष्कली, 7. निबद्ध, 8. भानुदत्त, 9. सुप्रतिष्ठ, 10. धनवान, तेजवान, विस्तीर्ण व बलवान हैं। जिन्होंने सूत्र में अनेक अर्थ प्राप्त किये हैं तथा सूत्र के अर्थ ग्रहण किये हैं तथा चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या तथा पूर्णिमा की तिथियों के दिन वे श्रावक प्रतिपूर्ण पौषध करने वाले,

साधु-साध्वी को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खादिम स्वादिम का प्रतिलाभ करते विचरते हैं, जिन मंदिरों में जिनप्रतिमाओं की त्रिकाल चन्दन, पुष्प, वस्त्रादिक द्वारा पूजा करते हुए निरन्तर विचरण करते हैं।

हे पूज्य! प्रतिमा-पूजन का उद्देश्य क्या ?

'हे गौतम ! जिनप्रतिमा को जो पूजता है वह सम्यग्दृष्टि, जो नहीं पूजता वह मिथ्यादृष्टि जानना। मिथ्यादृष्टि को ज्ञान नहीं होता, चारित्र नहीं होता, मोक्ष नहीं होता; सम्यग्दृष्टि को ज्ञान, चारित्र तथा मोक्ष होता है। इस कारण हे गौतम ! सम्यग्दृष्टि वाले को जिनमंदिर में जिनप्रतिमा की चन्दन, धूप आदि द्वारा पूजा करनी चाहिए।

श्री नन्दीसूत्र में इस महाकल्पसूत्र का उल्लेख किया हुआ होने से मानने लायक है। फिर भी नहीं माने तो उसे नन्दीसूत्र की आज्ञाभंग का दोष लगता है।

(3)

श्री भगवती सूत्र में तुंगीया नगरी के श्रावकों के अधिकार में कहा है कि-

"ण्हाया कय बलिकम्मा।"

अर्थात् - 'स्नान करके देवपूजा की'

(4)

श्री उववाई सूत्र में चम्पानगर के वर्णन में कहा है कि-

'बहुलाइं अरिहंत चेइआइं'

अर्थात् - 'अरिहंत के बहुत से जिनमंदिर है' तथा शेष नगरों में जिनमन्दिर सम्बन्धी चम्पानगर का निर्देश है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन समय में चंपानगर का निर्देश है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन समय में चंपानगर के साथ-साथ दूसरे शहरों में भी गली-गली में मन्दिर थे।

(5)

तथा श्री आवश्यक निर्युक्ति के मूल पाठ में कहा है कि-

तत्तो य पुरिमताल वग्गुरं ईसाण अच्चए पडिमं।
मल्लि जिणाययणपडिमा उन्नाए वंसि बहुगोठी।।1।।

भावार्थ – पुरिमताल नगर के रहने वाले वग्गुर नाम के श्रावक ने प्रतिमा–पूजन के लिये श्री मल्लिनाथस्वामी का मंदिर बनवाया।

(6)

श्री भगवती सूत्र में जघाचारण और विद्याचरण मुनियों द्वारा श्री जिनप्रतिमा को वंदन करने का अधिकार बीसवें शतक के नवें उद्देश्य में कहा है–

'नंदीसरदीवे समोसरणं करेइ, करेइत्ता तहिं चेइयाइं वंदइ, वंदइत्ता इहमागच्छइ इहमागच्छइत्ता, इह चेइआइं वंदइ।।'

भावार्थ– (जंघाचारण व विद्याचारण मुनि) श्री नन्दीश्वर द्वीप में समवसरण करते हैं। उसके बाद वहाँ के शाश्वत चैत्यों (जिनमंदिरों) की वन्दना करते हैं। वन्दना करके यहाँ भरतक्षेत्र में आते हैं और आकर यहाँ के चैत्यों (अशाश्वत प्रतिमाओं) की वंदना करते हैं।

(7)

श्री भगवतीसूत्र में चमरेन्द्र के अधिकार के तीन शरण कहे हैं। वे निम्नानुसार हैं–

'अरिहंते वा अरिहंतचेइयाणि वा भाविअप्पणो अणगारस्स'

भावार्थ–1. श्री अरिहंत देव 2. श्री अरिहंत देव के चैत्य (प्रतिमा) और 3. भावित है आत्मा जिनकी ऐसे साधु, इन तीनों की शरण जानना।

(8)

श्री आचारांग के प्रथम उपांग श्री उववाई सूत्रानुसार अम्बड़ श्रावक तथा उसके सात सौ शिष्यों ने अन्य देव गुरु की वन्दना का निषेध कर श्री जिनप्रतिमा तथा शुद्ध गुरु को नमस्कार करने का नियम लिया है। यह सूत्र पाठ निम्नांकित हैं–

"अंबडस्स परिवायगस्स नो कप्पइ अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिय देवयाइं वा अन्नउत्थिअपरिग्गहियाइं अरिहंतचेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा, नन्नत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइआइं वा"

अन्य तीर्थी के प्रति अथवा अन्य तीर्थों के देवों के प्रति अथवा अन्य तीर्थियों ने ग्रहण किये हों ऐसे अरिहंत के चैत्य (प्रतिमा) के प्रति वन्दना, स्तवना तथा नमस्कार करना अम्बड़ संन्यासी के लिए वर्जित है परन्तु अरिहंत अथवा अरिहंत की प्रतिमा को नमस्कार करना वर्जित नहीं है।

(9)

छठे अंग श्री ज्ञातासूत्र में द्रौपदी श्राविका के सत्रह भेदों की द्रव्य पूजा तथा भाव पूजा में 'नमोत्थुणं अरिहंताणं' कहने का पाठ आता है–

'तए णं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, मज्जणघरं अणुप्पविसइ, ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगल–पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं परिहिया मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता जिणघरं अणुप्पविसइ अणुपविसइत्ता आलोए जिणपडिमाणं, पणामं करेइ, लोमहत्थयं परामुसइ एवं जहा सुरियाभो जिणपडिमाओ अच्छेइ तहेव भाणिअव्वं जाव धुवं डहइ, धुवं डहइत्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेइता दाहिणजाणुं धरणितलंसि निहट्टु, तिखुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ निवेसेइत्ता ईसिंरपच्चुणमइ 2 करयल जाव कट्टु एवं वयासीनमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जावसंपत्ताणं वंदइ णमंसइ जिणघराओ पडिणिक्खमइ।''

इसका भावार्थ इस प्रकार है– इसके बाद वह द्रौपदी नाम की राजकन्या स्नान गृह के स्थान पर आती है और आकर मज्जनघर में प्रवेश करती है। प्रवेश कर पहले स्नान करती है। फिर बलिकर्म अर्थात् घरमंदिर की पूजा करके मन की शुद्धि के लिए कौतुक मंगल करने वाली वह, शुद्धि दोषरहित पूजन योग्य, बड़े जिनमंदिर में जाने योग्य प्रधानवस्त्र पहनकर मज्जन घर में से निकलती है और निकलकर जहाँ जिनमंदिर है उस स्थान पर आती है। आकर जिनघर में प्रवेश करती है तथा तत्पश्चात् मोरपंख द्वारा प्रमार्जन करती है। बाकी जैसे सूर्याभदेव ने प्रतिमा–पूजन की, उसी विधि से सत्रह प्रकार से पूजा करती है, धूप करती है। धूप करके बाँया घुटना ऊपर रखती है व दाहिना घुटना जमीन पर स्थापित करती है। तीन बार पृथ्वी पर मस्तक झुकाती है तथा फिर थोड़ी नीचे झुककर, हाथ जोड़कर, दस नाखून शामिल कर, मस्तक पर अंजलि कर ऐसा कहती है–'अरिहंत भगवान को नमस्कार हो' जब तक सिद्धगति को प्राप्त हुए तब तक अर्थात् सम्पूर्ण शक्रस्तव बोलती है। वन्दन–नमस्कार करने के बाद मंदिर में से बाहर निकलती है।

(10)

श्री उपासकदशांग सूत्र में आनन्द श्रावक द्वारा जिनप्रतिमा के वन्दन का पाठ है। वह निम्नलिखित है–

'नो खलु मे भंते! कप्पइ अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए वा, अन्नउत्थियदेवयाणि

वा, अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा''

भावार्थ - हे भगवन् ! मेरे आज से लेकर अन्यतीर्थी (चरकादि), अन्यतीर्थी के देव (हरि-हरादि) तथा अन्य तीर्थियों के द्वारा ग्रहण किये हुए अरिहंत के चैत्य (जिन प्रतिमा) आदि को वन्दन-नमस्कार करना वर्जनीय है।

अन्य देव तथा गुरु का निषेध होने पर जैनधर्म के देव-गुरु स्वयमेव वन्दनीय हो जाते हैं। फिर भी कोई कुतर्क करे तो उसे पूछे कि 'आनन्द ने अन्य देवों की, चारों निक्षेपों से वन्दना का त्याग किया अथवा भाव निक्षेप से?' अगर कहोगे कि 'अन्य देवों के चारों निक्षेपों का निषेध किया है' तब तो स्वतः सिद्ध हुआ कि अरिहंत देव के चारों निक्षेप उसे वन्दनीय हैं। यदि अन्य देवों के भावनिक्षेप का निषेध करने का कहोगे तो उन देवों के शेष तीन निक्षेप अर्थात् न अन्य देव की मूर्ति, नाम आदि आनन्द को वन्दनीय होंगे और इस तरह करने से व्रतधारी श्रावक को दोष लगेगा ही। अन्य देव हरिहरादि कोई आनन्द के समय में साक्षात् मोजुद नहीं थे। उनकी मूर्तियाँ ही थीं, तो बताओ कि उसने किसका निषेध किया? यदि कहोगे कि 'अन्य देवों की मूर्तियों का' तो फिर अरिहंत की मूर्ति स्वतः सिद्ध हुई। जैसे किसी के रात्रिभोजन का त्याग करने पर उसे दिन में खाने की छूट अपने आप हो जाती है।

इस पाठ में 'चैत्य' शब्द का अर्थ 'साधु' करके कितने ही लोग उलटा अर्थ लगाते हैं। उनसे पूछें कि-'साधु को अन्यतीर्थी किस तरह ग्रहण करे? यदि जैन साधु को अन्य दर्शनियों ने ग्रहण किया हो अर्थात् गुरु माना हो और वेष भी बदल दिया हो तो वह साधु अन्य दर्शनी बन गया। फिर वह किसी भी प्रकार से जैन साधु नहीं गिना जा सकता। जैसे शुक्रदेव संन्यासी ने थावच्चा पुत्र के पास दीक्षा ली उससे वह जैन साधु कहलाये पर जैन परिगृहीत संन्यासी नहीं कहलाये।वैसे ही साधु भी अन्यतीर्थी परिगृहीत नहीं कहलाते। **अतः चैत्य शब्द का अर्थ साधु कहना सर्वथा गलत है।**

तर्क-चैत्य शब्द का अर्थ यदि प्रतिमा करें तो उस पाठ में आनन्द ने कहा है कि 'मैं अन्य तीर्थी को, अन्य देव को तथा अन्य तीर्थी के द्वारा ग्रहण की हुई जिनप्रतिमा को वन्दन स्तवना नहीं करूंगा व दान नहीं दूँगा। ऐसी दशा में प्रतिमा के साथ दान देने का कैसे सम्भव है?'

समाधान - सूत्र का गंभीर अर्थ गुरु बिना समझना कठिन है। सूत्र की शैली ऐसी है कि जो शब्द जिस-जिस के साथ सम्भव हों उनको उनके साथ जोड़कर

उनका अर्थ करना चाहिए, नहीं तो अनर्थ हो जाता है। इससे अन्यदर्शी गुरु के लिए बोलने तथा दान देने का निषेध समझना। यदि तीनों पाठों की अपेक्षा साथ में लोगे तो तुम्हारे किये हुए अर्थ के अनुसार आनन्द का कथन नहीं मिलेगा क्योंकि उस समय हरिहरादि कोई देव साक्षात् रूप से विद्यमान नहीं थे। उनकी मूर्तियाँ थी। उनके साथ बोलने का तथा दान देने का अर्थ तुम्हारी मान्यतानुसार कैसे बैठेगा? अतः आगम वचन के अर्थ स्वबुद्धि से नहीं बल्कि शास्त्रबुद्धि से ही करने चाहिए।

(11)

सिद्धार्थ राजा के द्वारा की गई द्रव्यपूजा का वर्णन श्री कल्पसूत्र में इस प्रकार है–

"तए णं सिद्धथे राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्टमाणीयए सइए अ साहस्सिए अ, सयसाहस्सिए अ, जाए अ, लंभे पडिच्छमाणे अ पडिच्छावमाणे अ एवं वा विहरइ"

भावार्थ–उसके बाद सिद्धार्थ राजा, दस दिन तक महोत्सव के रूप में कुल मर्यादा का पालन करते हैं जिसमें सौ, हजार अथवा लाख द्रव्य लगे, ऐसे याग–अरिहंत– भगवन्त की प्रतिमा की पूजा करते हैं, औरों से करवाते हैं तथा बधाई को स्वयं ग्रहण करते हैं तथा सेवकों द्वारा ग्रहण करवाते हुए विचरण करते हैं।

शंका – सिद्धार्थ राजा ने यज्ञ किया था, पर पूजा नहीं की थी?

समाधान – सिद्धार्थ राजा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के बारह व्रतधारी श्रावक थे, ऐसा श्री आचारांग सूत्र में कहा है। तो विचार करें कि घोड़े, बकरे आदि पशुवध का यज्ञ वे कभी करेंगे या करायेंगे? लंभ अर्थात् बधाई। व्याकरण के आधार पर यज् शब्द ***देवं पूजयामीति वचनात्,*** देवपूजावाची है। श्रावक तो जिनयज्ञ–पूजा करता है। परम सम्यक्त्वधारी श्रावक सिद्धार्थ राजा श्री जिनमंदिर में द्रव्यपूजा करने से बारहवें देवलोक (मतांतर से चौथे देवलोक) में जाने का सूत्र में कहा है। यदि हिंसक यज्ञ करने वाले होते तो निश्चित ही नरक में जाने चाहिए, परन्तु सिद्धार्थ राजा के मोक्षगामी जीव होने का, श्री वीर परमात्मा ने फरमाया है। चौबीस तीर्थंकरों के माता–पिता निश्चय से मोक्षगामी जीव होते हैं।

(12)

श्री व्यवहार सूत्र में कहा है कि साधु जिनप्रतिमा के सम्मुख आलोचना लेते है।

श्री महानिशीथ सूत्र के चौथे अध्ययन में श्री जिनमंदिर बनवाने वाले को बारहवें देवलोक अर्थात् दान, शील, तप तथा भावना की आराधना से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल प्राप्त होता है, ऐसा फरमाया है।

काउंपि जिणाययणेहिं, मंडियं सव्वमेइणीवट्टं।
दाणाइचउक्केण सड्ढो गच्छेज्ज अच्चुयं जाव न परं।।1।।

भावार्थ - पृथ्वी तल को जिनमंदिरों से सुसज्जित करके तथा दानादि चारों (दान, शील, तप, और भाव) करके श्रावक अच्युत-बारहवें देवलोक तक जाता है, उससे ऊपर नहीं।

पुनः उसी सूत्र में अष्ट प्रकार की पूजा आदि का विस्तार से वर्णन है। सत्य जानने के इच्छुक लोगों को उसे देखना चाहिए।

(13)

श्री आवश्यक सूत्र में भरत चक्रवर्ती के श्री जिनप्रासाद बनवाने का उल्लेख है।

थूभसयभाउगाणं चउवीसं चेव जिणहरे कासी
सव्वजिणाणं पडिमा, वण्णपमाणेहिं निअएहिं

अर्थ- एक सौ भाई के सौ स्तम्भ तथा चौबीस तीर्थंकर महाराज के जिनमन्दिर सारे तीर्थंकरों की उनके वर्ण तथा शरीर के प्रमाणवाली प्रतिमाएँ श्री अष्टापद पर्वत पर भरत राजा ने स्थापित की।

(14)

श्री आवश्यक निर्युक्ति सूत्र में कहा है कि-

"अंतेउरे चेइयहरं कारियं पभावती ण्हाता, तिसंज्झं अच्चेइ, अन्नया देवी णच्चेइ, राया वीणं वायेइ"

भावार्थ-प्रभावती रानी ने अन्तःपुर में चैत्यघर (जिन भवन) बनवाया। रानी स्नान करके उस मन्दिर में प्रातःकाल, मध्याह्नकाल तथा सायंकाल त्रिकाल पूजन करती हैं। किसी समय रानी नृत्य करती है तथा राजा स्वयं वीणा वादन करता है।

(15)

श्री शालिभद्र चरित्र जिसे प्रायः तमाम जैन मानते हैं, में कहा है कि-

शालिभद्र के घर में उनके पिता ने जिनमंदिर बनवाया था तथा रत्नों की प्रतिमाएँ बनवाई थी। वह मंदिर अनेक द्वारों सहित, देवविमान जैसा बनाया गया था।

(16)

श्री भगवती, श्री रायपसेणी और श्री ज्ञातासूत्रादि अनेक सूत्रों में श्रावकों के वर्णन में ''ण्हाया कयबलिकम्मा।'' अर्थात् 'स्नान करके देवपूजा करना'' ऐसे उल्लेख हैं। श्री भगवतीजी में तुंगीया नगरी के श्रावक के अधिकार में कहा गया है कि ''श्रावक यक्ष, नाग आदि अन्य देवों को नहीं पूजे'' तथा श्री सूयगडांग सूत्र में भी कहा है कि नागभूतयक्षादि तेरह प्रकार के अन्य देवों की प्रतिमा को पूजने से मिथ्यात्वपना प्राप्त होता है तथा बोधिबीज का नाश होता है। इससे सिद्ध होता है कि श्री अरिहंतदेव की प्रतिमा को पूजने से समकित की प्राप्ति होती है तथा बोधिबीज की रक्षा होती है। इस कारण ''कयबलिकम्मा'' पाठ से श्रावकों को श्री जिनप्रतिमा की पूजा करनी चाहिए।

कितने ही ''ण्हाया कयवलिकम्मा'' का 'स्नान करके फिर पानी के कुल्ले किये' ऐसे शास्त्र के बिल्कुल विपरीत अर्थ करते हैं, जो असत्य है।

भावनिक्षेप से साक्षात् तीर्थंकर को वन्दन–पूजन करने का जो फल है तथा सम्यक्त्व और ज्ञान सहित चारित्र पालने का जो फल सूत्र में बताया है, वही फल श्री जिनप्रतिमा के वंदन पूजन का कहा है। यावत् मोक्षप्राप्ति तक का बतलाया है।

(17)

श्री दशाश्रुतस्कन्ध के दसवें अध्ययन में कहा है कि श्री महावीर स्वामी राजगृही नगरी में पधारे तब वन्दन करने जाने के लिए चेलणा रानी श्रेणिक राजा के पास आई और कहने लगी– (वह पाठ निम्नांकित है)

"चिल्लणादेवी एवं वयासी तं महाफलं देवाणउप्पिये! भगवं महावीरं वंदामो, णमंसामो सम्माणेमो, कल्लाणं मंगलं चेइयं पज्जुवासेमो तेणं इह भवे य परभवे य हियाए सुहाए स्वमाए निस्सेहाए आणउगामियत्ताए भविस्सइ।''

भावार्थ– निश्चित ! हे चिल्लणादेवी ! उसका महाफल होता है। किसका ? तो कहते हैं कि हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी को वन्दन करने से, नमस्कार करने से, सत्कार करने से कल्याणकारी मंगलकारी देव सम्बन्धी चैत्य (जिनप्रतिमा) की तरह पर्युपासना करने से इस भव और परभव में हित के लिए सुख के लिए, क्षेम के लिए, निःश्रेयस मोक्ष के लिए होता है तथा भवोभव में साथ में आने वाला होता है।

(18)

वैसा ही पाठ 'उववाई सूत्र' में चम्पानगरी के कोणिक राजा के अधिकार में आता है। साक्षात् भगवान् को वन्दनार्थ जाते समय के वर्णन का पाठ अनेक स्थलों में आता है।

(19)

श्री रायपसेणी सूत्र में सूर्याभदेव के अधिकार में कहा है– उसका पाठ निम्नलिखित है–

'तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स पंचविहाए पज्जवत्तीए पज्जत्तिभावं गयस्स समाणस्स इमेएयारूवे अज्झथिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था– किं मे पूव्विं करणिज्जं? किं में पूव्विंपि पच्छा वि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ?'

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणिय परिसोववण्णगा देवा सूरियाभस्स देवस्स इमेयारूवं अज्झथियं जाव संकप्पं समुप्पण्णं समभिजाणित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गंहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेन्ति, वद्धावित्ता सिद्धाययणे जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं अट्ठसयं सण्णिक्खित्तं चिट्ठइ। सभाएणं सुहम्माए णं माणवए चेइयखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सण्णिइक्खित्ताओ चिट्ठन्ति। ताओ णं देवाणुप्पियाणं अन्नेहिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं य देवीणं य अच्चणिज्जाओ। वंदणिज्जाओ णमंस–णिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ जाव पज्जुवास–णिज्जाओ। तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पूव्विं करणिज्जं, एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छा करणिज्जं, एयं णं देवाणउप्पियाणं पूव्विं सेयं एयं ण देवाणउप्पियाणं पच्छा सेयं, एयं णं देवाणुप्पियाणं पूव्विं पच्छा वि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

भावार्थ– तब वह सूर्याभदेव पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्ति भाव को प्राप्त हुआ। उस सूर्याभदेव के मन में इस प्रकार का विचार पैदा हुआ कि मुझे पहले क्या करना चाहिए? बाद में क्या करना चाहिए? मेरे लिए प्रथम कल्याणकारी क्या है? बाद में कल्याणकारी क्या है? आत्मा के लिए हितकारी, सुखकारी, क्षेमकारी, मोक्षकारी तथा परम्परा से शुभानुबन्धी क्या है?

सूर्याभदेव के उपर्युक्त विचारों को जानकर सूर्याभदेव की सामायिक सभा के देवता आकर सूर्याभदेव को हाथ जोड़कर, मस्तक में आवर्त कर, स्व पक्ष का जय, पर पक्ष का जय-विजय आदि शब्दों से वर्धापना करते हैं। तत्पश्चात् वे कहते हैं कि हे देवानुप्रिय ! आपके सूर्याभ विमान में सिद्धायतन (जिनमंदिर) है। उस मंदिर में 108 जिनप्रतिमाएँ हैं। उन प्रतिमाओं की अवगाहना जिनेश्वर समान है तथा सुधर्मा सभा में माणवक नामक चैत्य स्तम्भ है। उस स्तम्भ में वज्रमय पेटियाँ हैं। उनमें जिनेश्वरों की अस्थियाँ आदि स्थापित की हुई हैं।

हे देवानुप्रिय! वे जिनप्रतिमाएँ और अस्थियाँ सम्यग्दृष्टि के लिए अर्चन करने योग्य, वन्दन करने योग्य, नमस्कार करने योग्य, पूजन और सम्मान करने योग्य हैं तथा (वे प्रतिमाएँ) कल्याणकारी-मंगलकारी हैं अतः आपके लिये सर्वप्रथम यही कर्त्तव्य है और बाद में करने योग्य भी यही है. इसी में पहले और बाद में श्रेय है। आपको पहले और बाद में भी हितकारी, सुखकारी, क्षेमकारी, मोक्षकारी व परम्परा से शुभानुबन्धी होगा।...
...... आलेखन कर, अनेक प्रकार से धूपादि कर स्तुति में शक्रस्तव 'नमोत्थणं' कहकर सत्रह प्रकार से पूजा की है। उसका विस्तृत वर्णन श्री रायपसेणी में है जो अतिविस्तृत होने से यहाँ नहीं लिखा है।

श्री महावीरप्रभु ने पूजा का फल बताते हुए कहा है कि-

"**हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयस्साए अणुगामित्ताए भविस्सइ।**"

अर्थ-श्री जिनप्रतिमा की पूजा पूजक के हित के लिए, सुख के लिए, क्षेम के लिए, मोक्ष के लिए तथा जन्मान्तर में भी साथ में आने वाली है।

श्री जीवाभिगम सूत्र में विजयपोली तथा अन्य अनेक सम्यग्दृष्टि देवों के द्वारा की गई सत्रह प्रकार की पूजा का वर्णन है और उसका फल यावत् मोक्ष तक कहा है।

(20)

श्री ज्ञातासूत्र में तीर्थंकर गौत्र बंध के लिए बीस स्थानक कहे हैं। उनमें 'सिद्धपद की आराधना करना' ऐसा वर्णन है। उन अरूपी सिद्ध भगवान का ध्यान-आराधक उनकी मूर्ति बिना हो ही नहीं सकता।

(21)

श्री व्यवहार सूत्र में कहा है कि–

"सिद्धवेयावच्चेणं महानिज्जरा महापज्जवसाणं चेवति।"

सिद्ध भगवान की वैयावच्च करने से महानिर्जरा होती है अर्थात् मोक्ष मिलता है।

तर्क–सिद्ध भगवान की वैयावच्च तो नाम–स्मरण से ही हो जाती है तो फिर मूर्ति का क्या प्रयोजन ?

उत्तर–नामस्मरण को तो गुणगान, कीर्तन, भजन, स्वाध्याय आदि कहते हैं, वैयावच्च नहीं। यदि वैयावच्च का अर्थ ऐसा करोगे तो श्री प्रश्नव्याकरण में बालक की, वृद्ध की, रोगी की तथा कुलगणादि की दस प्रकार से साधु को वैयावच्च करनी चाहिये एसा कहा है । तो क्या केवल नामस्मरण से वैयावच्च हो जायेगी ? अथवा आहार–पानी, औषधि, अंगमर्दन, शय्या, संथारा आदि करने से होगी ? नाम आदि याद करने से वैय्यावच्च नहीं गिनी जाती, पर पूर्वोक्त प्रकार से सेवा भक्ति करने से ही गिनी जाएगी। सिद्ध भगवान की वैयावच्च तो उनका मंदिर बनवाकर, उसमें उनकी प्रतिमा स्थापित कर, वस्त्राभूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप द्वारा अष्ट प्रकारी व सत्रह प्रकारी आदि पूजा करना उसे ही कहा जाएगा।

(22)

श्री प्रश्नव्याकरण में आदेश है कि निर्जरा के अर्थी साधु को 'चेइयट्टे' अर्थात् जिनप्रतिमा की हीलना, उसका अवर्णवाद तथा उसकी दूसरी भी आशातनाओं का उपदेश द्वारा निवारण करना चाहिए।

(23)

श्री आवश्यक मूल सूत्र पाठ में

"*अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सगं*"

ऐसा कहकर, साधु तथा श्रावक, सर्वलोक में रही हुई श्री अरिहंत की प्रतिमा का काउस्सग्ग, बोधिबीज के लाभ के लिए करे– ऐसा फरमाया है।

(23)

"*थयथुइ मंगलं*"

स्थापना की स्तुति करने से जीव सुलभबोधि होता है ऐसा श्री उत्तराध्ययन सूत्र में लिखा है।

(24)

श्री अनुयोगद्वार तथा श्री ठाणांगसूत्र में चारों निक्षेप और चार प्रकार के तथा दस प्रकार के सत्यों का वर्णन किया हुआ है। जिसमें स्थापना निक्षेप तथा स्थापना सत्य भी आता है। उससे भी स्थापना अर्थात् मूर्ति को मानने की बात सिद्ध हो जाती है।

दुराग्रह रहित बुद्धिमान् लोगों के लिए केवल संकेत ही काफी है। सूत्र के सैकड़ों पाठों में से केवल इतने ही पाठ देना उचित समझते हैं। और भी कई प्रमाण प्रसंग आने पर बताये जायेंगे। उस पर वे विद्वान् पाठकगण वास्तविक निर्णय कर सकेंगे। अगर जैनों में परम्परा से मूर्तिपूजा न होती तो उसका उल्लेख मूलसूत्रों में कहाँ से आया? जगत् में प्रत्येक नामवली वस्तु अपने गुणविशेष से जुड़ी हुई है, वैसे ही 'मूर्ति' नामधारी वस्तु भी किसी प्रकार निरर्थक नहीं है। मूर्ति शब्द भी उसमें रही हुई वस्तु का वास्तविक बोध कराती है। वह स्थापना सिवाय अन्य किसी भी विषय के कारण से सिद्ध नहीं होती।

विशेष : आगम के पाठों के लिए देखें 'गयवर विलास', 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास', जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा', 'साँच को आँच नहीं' पुस्तक देखें।

मूर्ति पूजा और अहिंसा

कुछ लोग हिंसा की पृष्ठभूमि को आगे रखकर जिन-पूजा का विरोध करते हैं। और एक ही धुन लगाए रहते हैं।

* पूजा करने पर जल और फूल के कितने जीव मरते हैं?
* धूप दीप जलाने से अग्निकाय के कितने जीव मरते हैं?
* मंदिर निर्माण में कितने जीव-जन्तुओं का नाश होता है। यह कैसा धर्म है।

यह कैसी उपासना है?

जहाँ हिंसा हो वहाँ धर्म कैसे हो?

सचमुच यह बातें आधारहीन एवं तथ्य विहीन है। जैन-दर्शन को सम्पूर्ण रूप से जानने वाला ऐसी बात कभी नहीं करेगा।

तत्त्व जिज्ञासु व्यक्ति को शास्त्रीय रहस्य में जाना चाहिये और ज्ञान पाकर जीवन में उसका आचरण करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये।

आइये कुछ बातें देखें। जिन पूजा में हिंसा है या नहीं इस विषय पर कुछ दृष्टिपात करें। जो लोग यह कहते हैं कि जिन पूजा में हिंसा है। सर्वप्रथम उनसे हम पूछेंगे कि पूजा के अतिरिक्त जो धर्म है- क्या उसमें हिंसा है या नहीं?

हम आपसे पूछते हैं कि क्या-

1. उपाश्रय -स्थानक बनाने में हिंसा नहीं है?
2. उसमें मिट्टी और लोहे में पृथ्वीकाय के जीव की हिंसा नहीं है?
3. काठ की चौकी इत्यादि सामानों में वनस्पतिकाय की हिंसा नहीं है?
4. साधर्मिक वात्सल्य में षट्काय की हिंसा नहीं है?
5. संघ जिमन में साग-सब्जियों में वनस्पति जीव की हिंसा नहीं है?
6. गायों को घास खिलाने में हिंसा नहीं है?
7. प्यासे को जल पिलाने में हिंसा नहीं है?
8. व्याधिग्रस्त साधु-साध्वियों को फलादि रस आग्रह में वनस्पति काय की हिंसा नहीं है?

9. साधु-साध्वियों का विहार मार्ग में नदिया पार करने में हिंसा नहीं है?

10. साधुओं को प्रवचन करने में हाथ हिलाने में हिंसा नहीं है?

11. बड़ी तपस्या में पेट में व्याप्त कीड़े की हिंसा नहीं है?

12. पुस्तक छपवाने में हिंसा नहीं है?

अतः कौनसी ऐसी क्रिया है जिसमें हिंसा नहीं है। ऊपर बताये गये धर्मकार्यों में यदि हिंसा मानी जाये तो आपलोग कुछ भी नहीं कर पायेंगे। आपको जंगल की शरण लेनी होगी। और हाथ-पैर हिलाये बिना श्वासोश्वास बंद करके निश्चेष्ठ होकर बैठ जाना पड़ेगा। क्योंकि हर प्रकार की क्रिया में हिंसा होती है।

क्या यह सब धर्मकार्य बंद किये जा सकते हैं? क्या यह निर्माण कार्य अनुकम्पा, वैय्यावच्च, विहार, तपश्चर्या इत्यादि विविध प्रसंग रूक सकेंगे?

इसलिये बाह्य रूप से हिंसा नजर में आती हो; फिर भी आभ्यंतर रूप में वह हिंसा नहीं है। हिंसा का निर्णय बाह्य-प्रवृत्ति से नहीं होता, साथ-साथ अन्तरवृत्ति को भी समझना होगा।

जिनपूजा की प्रवृत्ति में जो हिंसा दिखाई जा रही है, उसको शास्त्रकार भगवान 'स्वरूप हिंसा' कहते हैं। अर्थात् जिसका बाह्य रूप में ही मात्र हिंसा दिखती है किन्तु अभ्यंतर मन-परिणाम में हिंसा नहीं है। अन्तर्मानस में अहिंसा के स्रोत बह रहे हैं, जो आत्म उर्मी को शस्य-श्यामला बना रहे हैं।

महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ने 'अध्यात्मसार' में बताया है कि जिनपूजा में वस्तुतः हिंसा है ही नहीं क्योंकि पूजा की प्रवृत्ति में प्रमादादि स्वरूप मिथ्यात्व दोष नहीं है। फल में दुर्गति का दुःख नहीं है। प्रवृत्तिजनक जो कर्मों का बंध होता है। वो भी अल्पमूल्य और कर्मानुबंध की जाल से रहित होते हैं।

प्रवृत्ति का हेतु शुद्ध होनेसे कर्मानुबंध हिंसक नहीं बनता है। बल्कि अहिंसक ही बनता है जिनके बल से जीवात्मा विपुल पुण्य सामग्री प्राप्त करता है, वैराग्य भाव को पाता है और सर्वजीवों को अभयदान देकर शिवपद को संप्राप्त करता है।

प्रवृत्ति और वृत्ति के खेल ऐसे निराले हैं कि कभी-कभी अच्छी प्रवृत्ति में बुरी-वृत्ति पाई जाती है। कभी-कभी बुरी प्रवृत्ति में अच्छी वृत्ति भी पाई जाती है। इसलिये प्रवृत्ति को देखकर ही निर्णय न करें।

पक्षी को दाना खिलाता दयालु (!)

शहर के एक सुप्रसिद्ध बगीचे में एक व्यक्ति थैले में ज्वार लिये बैठा था। मुट्ठीओं से ज्वार जमीन पर बिखेर रहा था, विचरण करते, कलरव करते पक्षी दाने को चुगने के लिये वहाँ आ रहे थे। पक्षी परिवार बढ़ रहा था। दयालु आदमी शांति से आसन लगाए दाना खा रहे पक्षी परिवार को देख रहा था।

कुछ देर बाद उसी राह से गुजरते हुए नौजवान ने पत्थर के टुकड़े उठाकर पक्षियों पर फेंके। किसी की पंख टूटी तो किसी की टांग टूटी। किसी को पीड़ा हुई तो किसी के शरीर से खून बहा। सब के चोंच से दाने भी गिर गये। शांति का भंग हुआ। वह दयालु देखता ही रह गया।

इस प्रसंग को देखकर अकस्मात् आपसे कोई प्रश्न करेगा की इन दोनों में आखिर दयालु कौन है? और क्रूर कौन है? आप दो मिनिट में उत्तर देंगे-

'दयालु वह है जिसने ज्वार दिया-
क्रूर वह है जिसने पत्थर फेंका'-

हिंसक और अहिंसक की व्याख्या चंद मिनिटों में कर दी। लेकिन आपने तो बाह्य प्रवृत्ति देखी वह गलत है। इसलिये कि जो व्यक्ति दाना दे रहा था वह पक्षियों का एक्सपोर्ट करने वाला था।

लेकिन पत्थर उठाने वाला व्यक्ति से उसकी चतुराई देखने के बाद रहा न गया। उसने सोचा कि व्यक्ति जो दाना चुगा रहा है वहाँ तक ठीक है, लेकिन साथ-साथ इस व्यापारी ने नेट भी लगा रखी है। और देख रहा है कि पक्षी इसके अन्दर आयें और नेट की रस्सी खींच लूं। नौजवान के पत्थरों ने समस्त पक्षियों के प्राण बचाये।

निष्कर्ष यह निकलता है कि जुआर (दाना) खिलाने वाला हिंसक क्रूर और दुष्ट है तथा पक्षियों को उड़ाने वाला नौजवान दयालु और अहिंसक है।

दृष्टांत से यह समझना है कि फूल तोड़ने की प्रवृत्ति को देखकर किसी को हिंसक करार नहीं किया जा सकता। उसकी प्रवृत्ति के साथ-साथ वृत्ति का भी मूल्यांकन करें। बाद में निर्णय लें।

एक और दृष्टांत देखें। संध्या का समय था। सब अडोसी-पड़ोसी मिल-जुल के खटीये पर बैठे थे। सामने वाले एक मकान के छप्पर से बिल्ली आ रही है। उसने मुँह में अपने बच्चों को पकड़ा है। दाँत दबाये हुए हैं। तेजी से भाग रही है। न मालूम कहाँ पर अपने बच्चे को स्थानांतर करा रही है।

देखने वाले सबके मुंह से आवाज निकली 'प्यार ! क्या दिल! क्या हृदय ! जानवर के भव में भी दिव्य प्रेम।'

बातें चल रही थी। उतने में ही वही बिल्ली वापस लौटी। मुंह में एक चूहे को ले जा रही है। जैसे बच्चे को मुंह में लिया था वैसे ही चूहे को लिया है। कुछ फर्क नहीं है। वही सिस्टम! वही दांत! वही बिल्ली! लेकिन देखने वाले सबके सब खड़े हो गये। पत्थर उठाये। प्रहार किये। और चिल्लाये छोड़ दे उस चूहे को ! हत्यारीन ! निर्दया!

इस प्रसंग को यहीं पर रोककर सोचें कि बच्चा और चूहा दोनों को पकड़ने की प्रवृत्ति समान है, फिर भी वृत्ति असमान है।

बाजार से घर सब्जी ले जाने वाले को आप हिंसक बोल सकते हैं। किन्तु घर से मंदिर फूल ले जाने वाले को हिंसक नहीं कह सकते। क्योंकि सब्जी को काटकर पेट भरने का इरादा है। और भगवान को फूल चढ़ा देने में प्रभु का अनुग्रह पाकर सर्व जीवों को अभयदान देकर संयमी होकर मोक्ष भाव पाने का इरादा है।

ऐसे शुद्ध आशय पूर्ण प्रवृत्ति में कहाँ पर स्वरूप हिंसा हो जाय तो उनकी गिनती नहीं है।

बम्बई की बड़ी इमारत में आग लगी है उसको बुझाने के लिये फायर-ब्रिगेड दौड़ रही है। और रास्ते में किसी आदमी का अकस्मात् हो गया तो सरकार ड्राइवर को सजा नहीं देगी। क्योंकि गाड़ी दौड़ाने में उसका आशय शुद्ध था। रास्ते में आदमी को मारने का नहीं था लेकिन लोगों को आग से बचाने का था।

अस्पताल में ऑपरेशन करते समय डॉक्टर पर मर्डर केस नहीं लगता है। क्योंकि डॉक्टर का आशय मरीज को मारने का नहीं किन्तु जीवन और स्वास्थ्य देने का था। ऐसे अनेक लौकिक दृष्टांत से भी समझा जाता है कि जिनपूजा की प्रवृत्ति हिंसक नहीं है। किन्तु अनुबंध में अहिंसक जानकर सर्व जीवों की हिंसा से मुक्ति दिलाने वाली प्रशस्त प्रवृत्ति एवं वृत्ति है।

जिनमंदिर जाने से लाभ

विघ्न नाशः प्रभु का दर्शन व पूजन भाव मंगल रूप है। उस मंगल से साधना मार्ग में आने वाले विघ्नों का नाश होता है और आत्मा मोक्षमार्ग में निर्विघ्नता से गति कर पाती है।

चित्त प्रसन्नता : प्रभु की भक्ति करने से शुभ भाव पैदा होता है, उस शुभ भाव से चित्त प्रसन्न बनता है।

स्मरण–दर्शन–पूजन : कृतज्ञ भक्त हृदय में प्रभु के गुणों का सदैव स्मरण रहता है। उस स्मरण के फल स्वरूप ही दिन उगता है और उसे प्रभु के दर्शन व पूजन करने की अभिलाषा पैदा होती है।

मंदिर जाने के फायदे

1. प्रभु दर्शन की इच्छा करने से 1 उपवास का फल मिलता है।
2. जाने के लिए खड़ा होने से 2 उपवास का फल मिलता है।
3. जाने के लिए कदम उठाने से 3 उपवास का फल मिलता है।
4. जिनालय की ओर चलने से 4 उपवास का फल मिलता है।
5. जिनालय तक आधा मार्ग पार करने से 15 उपवास का फल मिलता है।
6. जिनालय दिखाई देने पर 1 मास के उपवास का फल मिलता है।
7. जिनालय पहुँचने पर छः मास के उपवास का फल मिलता है।
8. जिनालय के द्वार में आने से 1वर्ष के उपवास का फल मिलता है।
9. जिनालय की प्रदक्षिणा देने से 100 वर्ष के उपवास का फल मिलता है।
10. प्रभु की पूजा करने से 1000 वर्ष के उपवास का फल मिलता है।
11. स्तुति–स्तवन करने से अनंत गुणा फल मिलता है।

(2000 वर्ष प्राचीन 'पउम चरियं' ग्रंथ में उल्लेख–वीर निर्वाण 530 में रचित उद्देश 32, श्लोक नं. 88–93)

मूर्तिकार और मूर्ति

किसी नगर में गंगादास नाम का एक शिल्पी रहता था। वह नगर के बाहर छोटी सी पहाड़ी पर पत्थर काटकर, मूर्तियाँ बनाया करता। उसकी बनाई मूर्तियाँ बहुत सुन्दर होती थीं। सेठ-साहूकारों की हवेलियों से लेकर राजमहल तक में ये मूर्तियाँ लगी हुई थीं।

शिल्पी का एक पुत्र था। नाम था-हरिदास। हरिदास अभी बालक ही था, पर वह मूर्तियों में रंग भरने का काम कर लेता था। गंगादास पत्थर तराशकर मूर्तियाँ बनाता जाता और हरिदास पिता के बताए अनुसार उनमें रंग भर देता। एक मूर्ति बनाने में कई माह लग जाते थे। दोनों पिता-पुत्र, सुबह-सुबह पहाड़ी पर चले जाते। शाम ढलने तक काम करते रहते।

एक दिन, गंगादास ने एक बड़े पत्थर को काटा। मूर्ति बनाने के लिए उसने उसे तराशना शुरु किया। कई दिन की मेहनत के बाद भी मूर्ति के नीचे का आधा हिस्सा ही तैयार हो पाया।

एक दोपहर, दोनों सुस्ताने के लिए एक शिला के पास बैठे थे। गंगादास ने हरिदास से कहा-'बेटा, यह अब तक की सबसे सुन्दर प्रतिमा होगी। राजा देखेंगे, तो मुहंमांगी कीमत देंगे।'

हरिदास बोला-'पिताजी, मैं भी इसमें बहुत ध्यान से रंग भरूंगा।'

वे बातें कर ही रहे थे कि अचानक ऊपर से एक बड़ा सा पत्थर लुढ़कता हुआ, गंगादास पर आ गिरा। पत्थर इतना भारी था कि गंगादास के प्राण पखेरु उड़ गए। हरिदास रोने लगा। अब वह बिल्कुल अकेला हो गया था।

मूर्तियाँ बेचकर गंगादास ने जो पैसे जोड़े थे, शुरु में उन्हीं से हरिदास का गुजारा होता रहा। पर धीरे-धीरे वे भी खत्म होने लगे। हरिदास सोचने लगा-'अब तो कोई-न-कोई काम करना ही होगा।'

एक दिन, उसने अपने पिता के औजार उठाए और पहाड़ी पर चला गया। वह अधूरी मूर्ति अभी भी वैसे ही पड़ी थी। हरिदास ध्यान से देखता रहा, परंतु उसकी समझ में कुछ न आया। मूर्ति के नीचे का हिस्सा ही बचा था।

ऊपर तो हल्की-हल्की लकीरें बनी थी।

हरिदास रोज पहाड़ी पर आ जाता। अधूरी मूर्ति को देखता रहता। उसके पैसे भी खत्म होते जा रहे थे। सोचने लगा–'मूर्ति पूरी होगी, तभी बिकेगी।' पर पूरी कैसे हो, यही समस्या थी।

एक दिन, हरिदास पहाड़ी पर बैठ कुछ सोच रहा था। अचानक उसकी नजर सामने झरने पर पड़ी वहाँ पर युवती अपनी गगरी में जल भर रही थी। पानी भरती युवती की उस मुद्रा को देख, हरिदास के मन में कुछ कौंधा। उसे लगा, जरुर पिताजी किसी पनिहारन की मूर्ति बनाना चाह रहे थे। उसने निर्णय किया–'अब यह मूर्ति मैं पूरी करूँगा।'

वह लड़की के पास गया। पूछा तो पता चला कि वह बनजारों की लड़की है। पहाड़ी के उस ओर उन्होंने डेरा डाल रखा है। हरिदास ने लड़की से कह–'तुम रोज यहाँ पानी भरने आया करो। मैं तुम्हें देखकर मूर्ति बनाना चाहता हूं।'

युवती मान गई। वह रोज सुबह–सुबह झरने पर पानी लेने आ जाती। हरिदास उसे देखकर मूर्ति बनाता रहता। पिता के छैनी–हथौड़े चलाते हुए हरिदास को लगता, मानो उसके हाथों में पिता के हाथ काम कर रहे हैं।

दो माह में मूर्ति बनकर तैयार हो गई। युवती जितनी सुन्दर थी, मूर्ति भी उतनी ही सुंदर बनी थी। हरिदास को अब ऐसे ग्राहक की तलाश थी, जो मूर्ति को खरीद ले। एक दिन राजकुमार भूपेन्द्र शिकार के लिए जंगल में गया। वहाँ एक मृग के पीछे उसने अपना घोड़ा दौड़ाया। मृग डरकर जंगल में निकल, पहाड़ी की ओर भागा। राजकुमार भी पीछे–पीछे चलता गया।

पहाड़ी पर अचानक मूर्ति के पास से गुजरते हुए भूपेन्द्र के कदम ठिठक गए। इतनी सुन्दर मूर्ति उसने पहली बार देखी थी। मूर्ति के नयन–नक्श देख वह उस पर मोहित हो गया। सोचने लगा–'कलाकार ने जरुर ऐसी लड़की को देखा होगा। तभी तो मूर्ति बनाई है। मुझे उससे मिलना चाहिए। मैं इस लड़की से विवाह करूंगा।' यही सोचते हुए वह महल में लौट आया। राजकुमार ने सैनिकों को भेजकर मूर्तिकार का पता लगवाया। सैनिक हरिदास को महल में बुला लाए। भूपेन्द्र ने हरिदास से पूछा–'तुमने जिस युवती की प्रतिमा बनाई है, क्या इसे देखा है?'

हरिदास बोला–'हाँ राजकुमार, वह बनजारों की लड़की है। पहाड़ी के उस पार उनका डेरा है। वे लोग कल ही यहाँ से कूच करने वाले हैं।'

भूपेन्द्र ने कहा–'तुम मुझे वहाँ ले चलो। मैं उस लड़की से मिलना चाहता हूँ।'

हरिदास राजकुमार को बनजारों के डेरे में ले गया। उस युवती ने हरिदास को अपने डेरे में देखा, तो हैरान हुई। हरिदास ने बताया–'यह राजकुमार भूपेन्द्र हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं।'

इतनी देर में डेरे के अन्य लोग भी वहाँ आ गए। राजकुमार ने युवती के पिता से कहा–'मैं राजकुमार भूपेन्द्र हूं। आपकी बेटी से शादी करना चाहता हूं।' राजकुमार से शादी की बात सुन, बनजारों को यकीन ही नहीं हो रहा था। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। धूमधाम से शादी हुई। राजकुमार ने बनजारों के लिए वहीं घर बनवा दिए। अब वे इधर–उधर भटकने के बजाय वहीं रहने लगे।

हरिदास की बनाई मूर्ति महल के आंगन में स्थापित कर दी गई। उसे इनाम भी मिला।

... जब युवती के चित्र को देखकर राग होता है...

युवती के पेंटिंग को देखकर भी काम वासना प्रगट होती है... **तो हे जीव ! तीर्थंकर की शांत रसमय मनोहर प्रतिमाँ को देखकर तीर्थंकर के प्रति राग क्यों नहीं होगा ? जरा सोचो...!**

मूर्तिपूजा का वैज्ञानिक महत्त्व

मंदिर में ही पूजा क्यों ?

मंदिर का वास्तु इस प्रकार है कि हमारी ध्वनि, हमारी पुकार पुनः लौटकर आ जाए। मंदिर का गुंबज और गर्भगृह, अर्ध गोलाकार ठीक आकाश की छोटी प्रतिकृति जैसा निर्मित किया गया। उसके भीतर जो भी मंत्रोच्चार या पूजा के स्वर निकलेंगे वे सीधे आकाश में नहीं खो जायेंगे बल्कि वापिस लौटकर प्रतिध्वनि पैदा करेंगे। ओम् का उच्चारण करें या मंत्र बोलें, प्रतिध्वनि के कारण एक सर्किल , एक वर्तुल निर्मित होता है। उस वर्तुल का आनंद ही अद्भुत है। पद्मासन में बैठी प्रतिमाएँ भी एक वर्तुल का निर्माण करती हैं। दोनों जुड़े हुए पैरों पर दोनों हाथ रखे हुए होते हैं। ध्यानस्थ मुद्रा में, तो पूरा शरीर वर्तुल का काम करने लगता है। इस वर्तुल के कारण शरीर की विद्युत कहीं बाहर नहीं निकलती।

मंदिर के गुम्बज से वर्तुल बनाने की बड़ी अद्भुत प्रक्रिया है। इसका ध्वनि से गहरा संबंध है। संस्कृत या प्राकृत में जो ध्वनि है, उसका प्रभाव शब्दगत की अपेक्षा ध्वनिगत ज्यादा है। हमारे शास्त्र 'श्रुत' कहलाते हैं क्योंकि पूर्वाचार्यों ने भ. महावीरस्वामी के निर्वाण के पश्चात् 980 वर्ष तक श्रुत-परम्परा से शास्त्रों का ज्ञान, एक गुरु से दूसरे शिष्य तक गया। जब शास्त्र लिपिबद्ध होने लगे तो यह 'श्रुत' या फोनेटिक प्रभाव लुप्त होने लगा। जैसे 'ऊँ' के अर्थ की अपेक्षा इसका ध्वनिगत महत्त्व ज्यादा है। मंदिर में की जाने वाली पूजा की ध्वनिगत उपयोगिता ज्यादा है। क्योंकि मंदिर के गर्भगृह में उच्चारी गई ध्वनि, वर्तुल बनाती है। वह वर्तुल प्रतिध्वनि, मूल ध्वनि से मिलकर तीव्रनाद (Intense Sound) पैदा करता है। इस प्रकार मंदिर एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो ध्वनि के माध्यम से हमारे/आपके भीतर-शांतिदायी और प्रीतिकर भाव को जगाने का अद्भुत काम करता है।

जिनाभिषेक

आगम में गर्भगृह के निर्माण एवं आकार के अनेक परिणाम तथा शैलियाँ बनायी हैं। गर्भगृह में विराजित 'जिन प्रतिमा' (मूलप्रतिमा) एवं मूल गंभारे के आकार अनुपात के विशेष संबंध से जब ऊँ या अन्य मंत्रोच्चार किया जाता है तो मूल गंभारे की हवा का एक-एक अणु अधिकतम घर्षण करता है जिससे वायुकण ''मेक्जीमम एम्प्लीट्यूड'' से कंपित हो उठते हैं, जिससे तीव्र नाद (Intense Sound) पैदा होता है। मूलगंभारे में ऋण आयनों की अधिकता होने से वह ऊर्जा का अनवरत स्त्रोत बना रहता है।

एक शोध में मूर्ति को अभिषेक के पूर्व एवं अभिषेक के बाद विद्युत प्रतिरोधकता एवं विद्युत चालक क्षमता मापी गयी और यह पाया कि अभिषेक के पहले प्रतिरोध अधिक होता है और अभिषेक के बाद प्रतिरोध कम हो जाता है। अभिषेक या मंत्रोच्चार से ऋणायन (Negative ions) में वृद्धि होती है। नेगेटिव आयन का आवेश, आक्सीजन को हीमोग्लोबिन से मिलाने में सहायक होता है। हीमोग्लोबिन रूधिर का वह तत्त्व है, जिसमें आक्सीजन घुलकर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचकर शरीर को स्वस्थ बनाये रखती है। ऋण आयानों वाले स्थान स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं। समुद्री किनारों, झरनों या पहाड़ी स्थानों पर ऋण आयानों की अधिकता पायी जाती है। यही कारण है कि हमारे तीर्थ स्थान ऐसे ही रमणीय व सार्थक स्थानों पर बने होते हैं। ये मूल्यवान 'ऋण–आयन' मूल गंभारे में विशेष प्रकार के पदार्थों से मूर्ति का अभिषेक करने पर उत्पन्न होते हैं।

शोध के कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निम्नांकित हैं–

1. गर्भगृह, आयतन अनुनादक (Volume Resonator) की भाँति व्यवहार करता है अतः ऊँ नाद की उत्पत्ति में सहायक है।

2. मूर्ति, ऊर्जा भण्डार (Energy Reservior) का कार्य करती है।

3. गर्भगृह की हवा, ऊर्जा के स्थानान्तरण में माध्यम का कार्य करती है।

यही कारण है कि गंभारे में खिड़की आदि नहीं रखी जाती ताकि ऊर्जा सिर्फ मूल गंभारे के मुख्य दरवाजे से प्रार्थी तक सीधे पहुँचे तथा गर्भगृह में बिजली के बल्ब आदि की रोशनी नहीं की जाती, क्योंकि उससे 'ऋण आयन' समाप्त हो जाते हैं। अतः मूल गंभारे में सिर्फ घी के दीपक का प्रकाश किया जाना चाहिए।

मेवाड़ में मूर्तिपूजा की प्राचीनता

स्थावर भाव तीर्थ : अनन्त उपकारी तीर्थंकर परमात्माओं के जन्म, दीक्षा, विहार, कैवल्य और निर्वाण से जो गाँव, नगर, पर्वत, उपवनों की भूमि पवित्र हो, अनन्त साधकों ने जहाँ सिद्धि पाई हो; तीर्थंकर परमात्माओं की प्राचीन, भव्य एवं प्रभावशाली प्रतिमाएँ जहाँ विराजमान हो; जो मंदिर भी अपनी प्राचीनता, भव्यता एवं कलाकारी से विश्वविख्यात हो; वे सभी स्थावर तीर्थ है। जैसे श्री शत्रुंजय महातीर्थ, श्री गिरनार तीर्थ, श्री सम्मेतशिखर, श्री अर्बुदगिरि (आबू) पर देलवाड़ा-अचलगढ़ के मंदिर, श्री वैभारगिरि, श्री राणकपुर, श्री केशरियाजी, श्री शंखेश्वर तीर्थ आदि।

ये स्थावर तीर्थ भव्य आत्माओं को स्मरण, स्पर्शन, दर्शन, वंदन, पूजन, ध्यान से सतत पावन करते हैं। ये तीर्थ पूरे भारत में करीब-करीब सभी राज्यों में विद्यमान हैं। तीर्थंकर भगवंतों के जन्मादि कल्याणक एवं विहार भूमि का अधिकाधिक श्रेय बिहार एवं उत्तरप्रदेश को है। अयोध्या, राजगृही, बनारस, सम्मेतशिखर, पावापुरी, चम्पापुरी प्रमुख तीर्थ इन दो प्रदेशों में हैं। गुजरात श्री शत्रुंजय और गिरनार से गर्वित है। बात रही राजस्थान की। यद्यपि यहाँ तीर्थंकर परमात्मा की कोई कल्याणक भूमि नहीं है, सिद्ध-क्षेत्र जैसा कोई क्षेत्र भी नहीं है, फिर भी तीर्थस्वरूप मंदिरों की बहुत संख्या है। इतनी संख्या अन्य किसी राज्य में नहीं है। इन तीर्थों की प्राचीनता, भव्यता, कलाकारी, क्षेत्र की विशिष्टता वगैरह संप्रदाय, इतिहास एवं अनुभूति का विषय है। प्रत्येक तीर्थ का अपना इतिहास है, अपनी महत्ता है, अपना प्रभाव है।

राजस्थान के तीर्थ : आबू देलवाड़ा के मंदिर कलाकृति के लिए विश्व-विख्यात है। अचलगढ़ का मंदिर धातुमयी प्रतिमाओं के लिए प्रसिद्ध है। राणकपुर का मंदिर भव्यता एवं कलाकृति की अपेक्षा विशिष्ट है। केशरियाजी तीर्थ श्री आदिनाथ भगवान की चमत्कारी प्रतिमा के लिए विख्यात है। जैसलमेर के मंदिर भी कला सौन्दर्य से सुन्दर हैं। बामणवाड़ा तीर्थ अहमदाबाद-दिल्ली हाईवे पर सिरोही रोड़ से आठ किलोमीटर पश्चिम दिशा में है। इतिहासवेत्ता सोहनलालजी पटनी के मत से राजस्थान भी साक्षात् प्रभु महावीर की विहारभूमि बनी थी। इस तथ्य की पुष्टि करने वाली अनेक बातें मिलती हैं।

बामणवाड़ा, नांदियाँ, मुंगथला, नाणा और दियाणाजी ये पाँच तीर्थ क्रमशः च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पाँच कल्याणकों की अवस्था सूचक जीवित प्रतिमा वाले तीर्थ कहे जाते हैं। तथा मुंगथला (प्राचीन नाम 'मुंडस्थल') से प्राचीन शिलालेख मिला था जिसमें स्पष्ट उल्लेख था कि भगवान महावीर स्वामी अपने जीवन के 37वें वर्ष में यहाँ पर पधारे थे।

वर्तमान में भी बामणवाड़ा, नांदियाँ और दियाणाजी में मूल प्रतिमाएँ हैं जो भक्तजनों को मानो भगवान महावीर साक्षात् दर्शन की अनुभूति कराती है।

मेवाड़ और जैनधर्म

मेवाड़ प्रदेश जैन धर्म की दृष्टि से भारत का प्राचीनतम स्थान रहा है। यह प्रारंभ से जैन धर्म का मुख्य केन्द्र रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता के समकालीन यदि कोई नगर मिलते हैं तो वे मेवाड़ में ही मिलते हैं और उस समय की लिपि अर्द्ध मागधी यहाँ पर ही मिली थी जिसको उदयपुर में आहाड़ (आयड़) के खनन से प्राप्त वस्तुओं में देखी जा सकती है। इसी प्रकार महाभारत कालीन नगरी चित्तौड़गढ़ के पास मिली है। विश्व के प्रथम सहकार व उद्योग केन्द्र जावर का निर्माण और उसके संचालन का श्रेय भी जैनियों को ही जाता है। दशार्णपुर में भगवान महावीर का आगमन हुआ। नाणा, दियाणा और नांदियाँ में भगवान महावीर की जीवन्त प्रतिमाएँ हैं। ऋषभदेवजी (केशरियाजी) तीर्थ भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। यह प्रतिष्ठित प्रतिमा संवत् 928 में वटप्रद नगर (डूंगरपुर) में प्रगट हुई।

देलवाड़ा, राणकपुर मंदिर जैसी कला अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगी। मेवाड़ के देलवाड़ा के पास ही नागदा नगर प्राचीन काल का यह प्रमुख व्यापारिक केन्द्र रहा व मेवाड़ की राजधानी भी थी यहाँ की पहाड़ी पर श्री पार्श्वनाथ भगवान का 10वीं शताब्दी का मंदिर है। इसी प्रकार देलवाड़ा जैन मंदिर में प्रतिमा सं. 1315 की,गुरूमूर्ति संवत् 1381 व गुरु पादुका संवत् 1165 की स्थापित है जो स्थवीर (स्थायी) कही जाती है। देलवाड़ा में श्री सोमसुंदरसूरि कई बार आये व उन्होंने अपनी रचनाएँ रची, इसी प्रकार श्री जिनसागर सूरि देलवाड़ा के निवासी थे, इन्होंने व श्री सोमसुन्दर सूरिजी ने संवत् 1450 से अनेकों प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई। देलवाड़ा के श्रेष्ठी श्री रामदेव व उनकी पत्नी ने भी अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई। श्री करेड़ा (भूपालसागर) के जिन मंदिर के एक स्तम्भ पर संतव् 55 उत्कीर्ण होने का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट होता है कि मंदिर अत्यधिक प्राचीन है

तथा यहाँ पर संवत् 1039 का शास्त्रोक्त साहित्य भी विद्यमान है। वर्तमान में संवत् 1021 की प्रतिमा विद्यमान है। यहाँ पर संवत् 861 की प्रतिमा प्रतिष्ठित होने का उल्लेख है। अब मेवाड़ के बारे में जानना आवश्यक हैः–

मेवाड़ की उत्पत्ति – मेवाड़ राज्य के परिक्षेत्र में 'मेर–मेर' नामक जाति रहा करती थी और उन्हीं का अधिकार भी था, इसलिए सर्वप्रथम इसको मेदपाट कहा जाने लगा, तदुपरान्त श्रुत कथा के अनुसार मेदपाट राज्य के चारों ओर अरावली की पहाड़ियाँ फैली हुई हैं, इसलिए इसको मेरूवाड़ कहा जाने लगा अर्थात् पहाड़ों की बाड़ है। बाद में लघु नाम 'मेवाड़' दिया गया। इस जाति की गणना हुणों से की जाती है लेकिन ये लोग (मेर जाति) शाकद्वीपीय ब्राह्मण जैसे कहलाते थे, जिनका प्रादुर्भाव ईरान की तरफ (शकस्तान) से बतलाया जाता है। इस राज्य की सीमा चित्तौड़गढ़ से 10 किलोमीटर की दूरी पर मध्यमिका नाम की प्राचीन नगरी के खण्डहर हैं, जिसको वर्तमान में भी नगरी कहा जाता है। यहाँ से प्राप्त सिक्के विक्रम संवत् के पूर्व तीसरी शताब्दी के ब्राह्मी लिपी के लिखे हुए हैं। इन सिक्कों पर लेख है।

मलि मिकान–शिवि–पदस (शिविदस)मध्यमिका का सिक्का था। इससे स्पष्ट है कि मेवाड़ प्रान्त चितौड़ के आस–पास था जो शिवि नाम से प्रसिद्ध था। बाद में मेवाड़ कहलाया जिसका वर्णन उपर उल्लेखित है। नगरी से प्राप्त शिला लेख जो 150–200 पूर्व का है। यह कईं भागों में खण्डित है ।

इस पर धोसुण्डी लिपी है, अस्पष्ट है। इस पर संस्कृत, राजस्थानी (मेवाड़ी) ब्राह्मी लिपी में अंकित है तथा अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन है। यह भाषा राजस्थान में ही प्रचलित थी। (राजस्थान के इतिहास के स्तोत्र द्वारा गोपीनाथ शर्मा) यह शिलालेख उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है।

आहाड़ (आघाटपुर) प्राचीन नगर जो ईसा पूर्व का है जिसके प्रमाण कुछ इस प्रकार है–आहाड़ में स्थित गंगोभदेव (गंगोद्‌भव) अपभ्रंश गंगोज कुण्ड है, इसके बीच में स्थित छत्री राजा विक्रमादित्य के पिता गन्धर्वसेन की मानते हैं। इस नगर को मालवा के परमार राजा मुंज ने वि.सं. 1030 के लगभग आक्रमण कर नष्ट किया, तत्पश्चात् प्राकृतिक आपदाओं से पूरा नगर नष्ट हो गया। सं. 1000 का शिलालेख जो राजा भर्तृभट्ट के समय का है, उसको तोड़कर दूसरे कुण्ड की दीवार में लगाया। एक आहाड़ में स्थित जैन मंदिर की व दूसरे को हस्तीमाता मंदिर की

सीढ़ी पर लगाया गया। वर्तमान में आहाड़ के जैन मंदिर के जिर्णोद्धार होंने से यह लेख सुरक्षित नहीं रहा।

राजा अल्लट के समय सं. 1010 के शिलालेख के पत्थर से सारणेश्वर महादेव का छज्जा बना। उक्त चारों शिलालेखों में से दो को संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। कुम्भलगढ़ से भी जो शिलालेख उपलब्ध हुए वे सुरक्षित रखे गये हैं। इसी प्रकार भीलवाड़ा से 50 किलोमीटर दूरी पर नांदसा गाँव के एक गोल स्तंभ 12'' ऊँचा व 5.5'' गोलाई का है, इस पर 11 पट्टिकाओं का लेख है। नगरी का लेख (425 ई.) का है। इसका आकार 11'' x 11'' का है जिन पर 8 पंक्तियाँ है। संस्कृत व नागरी लिपी का लेख है। यह लेख अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार महाराणा अपराजित का शिलालेख जो कुण्डेश्वर मंदिर पर था, अब सरस्वती पुस्तकालय के संग्रहालय में है। जिस पर वि. सं. 718 माघ सुदि का लेख उत्कीर्ण है। यह शिलालेख नागदा से मिला था।

आचार्य श्री हरिभद्रसूरि चित्तौड़ के रहने वाले थे, उन्होंने लाखों लोगों को प्रतिबोधित कर अहिंसक जैन बनाये व कई कृतियों की रचना की। 7 वीं शताब्दी में मेवाड़ के महाराणा तेजसिंह ने जैन धर्म अंगीकार किया तदुपरान्त महाराणा अल्लट, जैत्रासिंह ने भी जैन धर्म का पालन किया। महाराणा समरसिंह ने मेवाड़ राज्य में जीव हिंसा निषेध आज्ञा प्रसारित की। आचार्य जगच्चन्द्रसूरि को 'तपा-हीरला' बिरुद की उपाधि प्रदान की एवं यहाँ से तपागच्छ की उत्पत्ति हुई । चित्तौड़, नागदा व एकलिंगजी आदि स्थानों पर जहाँ पर विशाल हिन्दू मंदिर है, उनमें जैन मूर्तियाँ अंकित मिलेगी। यहाँ जैन मंदिर जितने अधिक तादाद में हैं, उतने अन्य सभी धर्म के नहीं मिलेंगे।

मेवाड़ व जैन धर्म का संबंध संवत् 79 से होने का उल्लेख मिलता है। वि.सं. 79 में आचार्य देवगुप्तसूरि तथा संवत् 215 में श्री यक्षदेवसूरि का मेवाड़ में विहार करने का उल्लेख मिलता है। उसके बाद सातवीं शताब्दी में श्री हरिभद्रसूरि का प्रमाण मिलता है। वि.सं. 1000 में चैत्रपुरीय गच्छ के आचार्य द्वारा आदिनाथ भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई गई। संवत् 1044 में हरिषेण रचित जैन ग्रंथ में मेवाड़ देश का उल्लेख किया गया है। युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी को आचार्य पदवी चित्तौड़ में प्रदान हुई।

मेवाड़ का दक्षिणी भारत से भी संबंध रहा है। कई दिगम्बर विद्वान कन्नड़ क्षेत्र

से यहाँ आते-जाते रहे थे। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में भी यह उल्लेखित है कि दिगम्बर आचार्य ऐलाचार्य चित्तौड़गढ़ दुर्ग पर रहते थे। वीरसेनाचार्य भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए ऐलाचार्य के पास आये थे। दक्षिणी भारत में उत्कीर्ण लेखों में कई स्थानों पर चित्रकूट (चित्तौड़) का उल्लेख आता है।

यद्यपि मेवाड़ के शासक शैव, वैष्णव धर्म के उपासक थे फिर भी जैन धर्म का प्रचार प्रचुर मात्रा में हुआ और फला-फूला। यहाँ तक कि महाराणा कर्णसिंह (रणसिंह) के पुत्र श्रवण ने यति धर्म स्वीकार किया तथा इनके भी पुत्र पतजी ने जैन धर्म अंगीकार किया। इसके पूर्व महाराणा खुमाण के वंशी सदस्य जैन धर्म में चारित्र धर्म स्वीकार किया और जैन शासन श्री समुद्रसूरिजी ने सम्भाला था इसके ही कई शासक जैन साधुओं का सत्कार करते थे और उन्हें मेवाड़ में आने के लिए लिखित में निमंत्रण भेजते थे।

आघाटपुर (आहाड़) की सभ्यता के अनुरूप ही उदयपुर जिल्ले के जावर नगर (ग्राम) बहुत प्राचीन है। इस नगर का प्राचीन नाम योगिनी पत्तन अथवा योगिनीपुर था। इस नगर में चतुर्थ शताब्दी में श्रेयमन संत (श्रेयमनगिरी) जैन संत रहा करते थे और यह जैन श्रेष्ठियों के लिये एक तीर्थ स्थल रहा है जैसा कि तीर्थ स्तवन में इसका उल्लेख आता है। इसके बाद 7वीं शताब्दी के मेवाड़ के महाराणा शिलादित्य के समय का शिलालेख (संवत् 703) इस क्षेत्र से उपलब्ध हुआ जो अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है। जैन मंदिरों के खण्डहर एवं खण्डित मूर्तियाँ आज भी देखी जा सकती है। यह एक औद्योगिक नगर था और आज भी है।

वास्तव में मेवाड़ भारत वर्ष की आत्मा है जो सर्वदा प्रतिस्पिन्दित होती है।

आईए मेवाड़ के कुछ तीर्थों की भावयात्रा करें-

1. श्री केशरियाजी तीर्थ

तीर्थाधिराजः श्री आदिनाथ भगवान, अर्द्ध पद्मासनस्थ, श्यामवर्ण लगभग 105 से.मी.।

तीर्थस्थल : ऋषभदेव गाँव में पहाड़ों की ओट में।

प्राचीनता : भव्य चमत्कारी, भक्तों की मनोकामनाएं पूर्ण करने वाली इस प्रतिमा की प्राचीनता व इतिहास के बारे में अनेक मान्यताएँ हैं। उनमें यह भी एक है कि यह अलौकिक प्रतिमा बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतस्वामी भगवान के समय

प्रतिवासुदेव लंकाधिपति श्री रावण के यहाँ पूजित थी। पश्चात् मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी अयोध्या लेकर आये। बाद में उज्जैन में रही। पश्चात् दैवीय शक्ति से वटपद्रनगर (बड़ोदा) के बाहर वटवृक्ष के नीचे प्रकट हुई। (जहाँ अभी भी प्रभु के चरण स्थापित हैं) कुछ वर्षों तक वटपद्रनगर में पूजी जाने के बाद पुनः दैवीयशक्ति द्वारा यहाँ से लगभग एक कि.मी. दूर एक वृक्ष के नीचे प्रकट हुई व जहाँ पर भी प्रभु के चरण स्थापित हैं व वार्षिक मेले का विराट जुलूस वहीं पर विसर्जित होता है।

इस मंदिर के बारे में कहा जाता है कि मंदिर ईटों का बना व बाद में पत्थरों का बना था। सन् 1431 में जीर्णोद्धार होने के प्रमाण मिलते हैं। उसके पश्चात् भी जीर्णोद्धार होने के उल्लेख हैं। समय-समय पर अनेक यात्री संघ व आचार्यगण यहाँ दर्शनार्थ आने के उल्लेख है।

विशिष्टता : यह मेवाड़ राज्य में जैनियों का एक मुख्य तीर्थ स्थान है। मेवाड़ के राणा हरदम प्रभु के अनुयायी रहे व श्रद्धा-भक्ति से प्रभु के चरणों में दर्शनार्थ आते थे। राणा फतेहसिंहजी ने प्रभु के लिए स्वर्णमयी रत्नों जड़ित अमूल्य आंगी भी भेंट की थी। अभी भी वह आँगी नकरे से चढ़ायी जाती है। यहाँ पर जैनेतर भी श्रद्धा व भक्ति पूर्वक हमेशा आते रहते हैं। भील समुदाय में प्रभु काला बाबा के नाम से प्रचलित हैं।

यहाँ नयी-नयी चमत्कारिक घटनाओं का अनेक भक्तों द्वारा वर्णन किया जाता है। यहाँ पर केशर चढ़ाने की मानता सदियों से चली आ रही है व हमेशा अत्यधिक मात्रा में केशर चढ़ती है। कभी-कभी तो केशर का इतना विलेपन हो जाता है कि प्रभु का वर्ण केशर-सा प्रतीत होने लगता है। आज तक मणों केशर चढ़ गयी। इसलिए प्रभु को केशरियानाथ कहते हैं। प्रभु को केशरियालाल, धुलेवाधणी आदि भी कहते हैं।

प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा अष्टमी की प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिवस मेला भरता है । इस अवसर पर हजारों नर-नारी इकट्ठे होते हैं। भील लोग अत्यन्त भक्ति भाव से नाचते झूमते। यह दृश्य अति ही रोचक व भक्ति भाव को बढ़ाता है।

यहाँ की देदीप्यमान आरती अति ही दर्शनीय है। उस समय हर भक्त तल्लीन होकर अपने आप को प्रभु में खो देता है।

अन्य मंदिरः इस मंदिर के अहाते में वि. सं. 1688 में स्थापित हस्तिरूढ़ श्री मरुदेवी माता की मूर्ति व श्री जगवल्लभ पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर है। गाँव के बाहर वृक्ष के नीचे एक देहरी में प्रभु की प्राचीन चरणपादुकाएँ हैं। कहा जाता है प्रभु की प्रतिमा यहीं से प्रकट हुई थी। मेले के दिन प्रभु की रथयात्रा यहीं पर सम्पूर्ण होती है।

कला और सौन्दर्यः श्री केशरियाजी का यह बावन जिनालय मंदिर दूर से ही अति ही सौम्य प्रतीत होता है। शिखरों, तोरण-द्वारों व स्तम्भों आदि की कला अतीव सुन्दर व आकर्षक है।

प्रभु प्रतिमा की कला तो अवर्णनीय है ही, प्रभु का मुख मण्डल इतना आकर्षक है कि दर्शन मात्र से मन प्रफुल्लित हो उठता है।

2. महामंत्री दयालशाह व दयालशाह तीर्थ

मुगल शहंशाह शाहजहाँ के शासन काल में जोधपुर के निकट एक छोटे से गाँव में राजाजी ओसवाल अपनी पत्नी रयणदे के साथ निवास करते थे। उनके एक मात्र पुत्र का नाम दयालदास था। जब दयालदास युवा हुआ तो अपने तेजस्वी चेहरे के कारण अत्यन्त प्रभावशाली प्रतीत होने लगा। उसका आकर्षक मुख व्यक्ति को मुग्ध करने के लिये पर्याप्त था।

दयालदास चाहता था कि किसी बड़े शहर में जाकर वह अपना भाग्य आजमाये। वह अपने योग्य कोई व्यवसाय अथवा कार्य करना चाहता था। माता-पिता के आशीर्वाद प्राप्त करके वह उदयपुर आया, जहाँ उसे राजपुरोहित के पास नौकरी प्राप्त हो गई। उस समय मेवाड़ में महाराणा प्रताप के वंशज राणा राजसिंह का शासन था।

दयालदास ने राजपुरोहित के पास सामान्य कार्य की नौकरी प्रारम्भ की, परन्तु कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वह प्रत्येक कार्य को बारीकी से देखता और पैनी दृष्टि के कारण कार्य का मर्म समझ जाता। राजपुरोहित के सम्पर्क में आने वाले समस्त व्यक्तियों को वह पहचानने लग गया, उनके वार्तालापों को वह ध्यान से सुनता और राजकार्य को सूक्ष्मता से देखता। वह राजनीति सम्बन्धी गुत्थियों में भी रूचि लेने लगा, जिससे उसके मस्तिष्क का विकास होता रहा।

ऐसे समय राणा राजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह का देहान्त हो गया। विशिष्ट

व्यक्तियों में होते वार्तालापों एवं राजनीतिज्ञों की चर्चा आदि के आधार पर यह जान गया कि जयसिंह की मृत्यु में कोई रहस्य है। उसकी मृत्यु प्राकृतिक नहीं है। राज–सिंहासन के उत्तराधिकार के लिए एक षड़यन्त्र हुआ है, जिसमें जयसिंह की सौतेली माता का हाथ है। दयालदास की पैनी दृष्टि में यह भी आ गया कि स्वयं राजपुरोहित भी इस षड्यंत्र में सम्मिलित है और रानी के साथ राजपुरोहित का अच्छा परिचय है।

दयालदास दूर से ही इन समस्त बातों का ध्यान रखता था, ताकि राजपुरोहित को कोई भनक न पड़े। वह नहीं चाहता था कि वह किसी संकट में फंस जाये, अतः वह सतर्क होकर अपना कार्य करता था। वह राजदरबार के कारनामें समझने लग गया था।

एक दिन रानी का एक पत्र राजपुरोहित के पास आया, जिसे पुरोहित ने अपनी कटार की जेब में डाल दिया, ताकि किसी के हाथ में न जाये। दयालदास को उस दिन अपने स्वयं के कार्य से अपने ससुराल के गाँव देवाली जाना था। जंगल में होकर जाना पड़ता था और लौटते समय रात्रि हो जाने की भी सम्भावना थी। अतः सुरक्षा की दृष्टि से दयालदास ने राजपुरोहित से उनकी कटार मांग ली। कटार लेकर वह चल पड़ा। मार्ग में कटार की धार देखने के लिए उसने उसे म्यान से बाहर निकाला, तब उसकी दृष्टि उसमें रखे उस पत्र पर पड़ी। पत्र धीरे से बाहर निकालकर उसने पढ़ लिया। पढ़ते ही वह चौंक पड़ा, उसका रोम–रोम खड़ा हो गया। वह सोचने लगा– 'यह सब क्या प्रपंच है ?'

पत्र पढ़ते ही वह समझ गया कि राणा राजसिंह का भी वध करने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। मेवाड़ का राजय–सिंहासन अपने पुत्र को प्राप्त हो सके, उसके लिए रानी अपने पति की हत्या करने के लिए भी तत्पर हो गई है और राजपुरोहित का इस षडयन्त्र में पूर्ण सहयोग है।

जब वह देवाली से लौट रहा था, तब उसने मार्ग में एक उच्च कुल की पुत्री को भीलों के साथ संघर्ष करते देखा। दयालदास ने लड़की की सहायता की और भीलों को खदेड़ दिया। वह लड़की नगरसेठ मोहनलाल की पुत्री पारमदे थी। पारमदे ने दयालदास का अत्यन्त एहसान माना।

दयालदास की आयु तो अभी कम थी, परन्तु बुद्धि में परिपक्वता आ गई थी। चेहरे पर उसने कोई अन्य भाव नहीं आने दिया और उक्त पत्र पुनः कटार की जेब में

ज्यों का त्यों रख दिया ताकि राजपुरोहित को किसी प्रकार का संदेह न हो। ससुराल से लौट कर उसने कटार राजपुरोहित को लौटा दी। कटार दयालदास को देने के बाद पुरोहितजी को उस पत्र का स्मरण हुआ। वह घबरा गया। दयालदास की वह प्रतीक्षा कर रहा था कि कब वह आये और कटार की म्यान में पत्र देखूं। उसने भीतरी कक्ष में जाकर देखा तो कटार की म्यान की जेब में पत्र यथावत् था। दयालदास के चेहरे से ऐसा कोई आभास नहीं हुआ कि उसने पत्र पढ़ लिया है। पुरोहित के हृदय में शान्ति हुई।

वह राजसिंह के वध के षड्यन्त्र में अग्रसर हुआ। उसने अपनी विश्वस्त दासी को विष की पुड़िया देकर कहा कि 'अमुक दिन तू राणाजी को दूध में पिला देना।' राजपुरोहित ने दासी को इस कारनामे के लिए एक स्वर्ण की अंगूठी प्रदान की। दासी निर्देश सुनकर चली गई। दयालदास ने दीवार की आड़ में खड़े रहकर उनका वार्तालाप सुन लिया और राणा राजसिंह को सचेत करते हुए कहा, 'महाराज! अमुक दिन अमुक दासी आपको विष मिलाकर दूध पिलाने आयेगी। उसे आप कदापि न पियें।'

महाराणा ने दयालदास का परिचय जानकर षड़यन्त्र के सम्बन्ध में सब कुछ जान लिया। योजनानुसार निश्चित दिन पर दासी दूध का प्याला लेकर उपस्थित हुई। राणाजी तो सावधान थे ही। उन्होंने दासी को कहा, मेरी आज दूध पीने की इच्छा नहीं है। आज तू ही यह दूध पी ले।'

दासी काँप उठी। वह रो पड़ी। वह समझ गई कि राणाजी को षड़यन्त्र का पता लग गया प्रतीत होता है। उसने राणाजी के चरणों में गिरकर षड़यन्त्र का भेद खोल दिया। तत्क्षण राजपुरोहित के मकान की तलाशी ली गई। रानी का लिखा हुआ वह पत्र मिल गया। रानी तथा राजपुरोहित को कठोर कारावास का दण्ड दिया गया और दयालदास को उच्च पद पर नियुक्त कर दिया गया। दयालदास की योग्यता देखकर उसे कुछ ही समय में राज्य का महामंत्री बना दिया गया और वह दयालशाह के नाम से विख्यात हो गया। नगरसेठ सोहनलाल ने अपनी पुत्री पारमदे का विवाह उसके साथ कर दिया।

उसी दरम्यान दिल्ली के सिंहासन पर बादशाह औरंगजेब आ गया। उसने सिंहासन पर बैठते ही अत्याचारों की झड़ी लगा दी। हिन्दू तो हायतोबा करने लगे। अनेक हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन कर लिया। अनेक व्यक्ति दक्षिण की ओर भाग गये। औरंगजेब ने हिंदुओं पर जजिया लगा दिया।

मेवाड़ के महामंत्री का हृदय औरंगजेब के अत्याचारों से व्यथित हो गया। उसने बादशाह को येन केन प्रकारेण रोकने का निश्चय किया। सर्वप्रथम महाराणा की मोहर लगाकर जजिया एवं अन्य अत्याचार बंद कराने के लिए औरंगजेब को निवेदन किया, परन्तु सत्ता के मद में चूर धर्मान्ध बादशाह ने उस पत्र की अवहेलना की। महाराणा ने घोषणा कर दी कि हम जजिया नहीं देंगे। क्रोधित औरंगजेब ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया।

फिर तो महामंत्री दयालशाह तथा मेवाड़ी शूरवीरों ने निश्चय किया कि 'हम बादशाह की सेना से अरावली पर्वत की श्रेणियों में लोहा लेंगे। शाही सेना उन गुफाओं आदि से सर्वथा अपरिचित है, अतः उन पर्वतों में से बड़ते हुए हम उन्हें अवश्य परास्त करेंगे।

मेवाड़ी योद्धा अरावली की पर्वत श्रेणियों पर चढ़ गये। जनता शहरों से निकलकर गाँवों तथा पर्वतों में छिप गई। जब मुगल सेना ने देखा कि उदयपुर एवं चित्तौड़ सुनसान हो गये हैं और प्रजा अरावली पर्वत माला में छिप गई है, तब मुगल सेना भी अरावली पर्वत माला में पहुँच गई। वहाँ सर्वत्र बड़ी-बड़ी चट्टानें और जंगल थे। रात्रि में शेर-चीतों की गर्जना सुनाई देती थी। मुगल सैनिक दिन भर पर्वत मालाओं में मेवाडी प्रजा की खोज करते पर वहाँ कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता था। जब मुगल सैनिक छावनी में सोते, तब मेवाड़ी योद्धा उन पर आक्रमण कर देते और अनेक मुगल सैनिकों का संहार करके अदृश्य हो जाते।

ऐसी विकराल परिस्थिति के समय केवल मेवाड़ के राजपूतों ने ही शस्त्र नहीं उठाये, बल्कि दयालशाह जैसे वणिकों एवं व्यापारियों के साथ मेवाड़ी भील भी मुगलों के विरुद्ध लड़ते रहे। नारियाँ भी पीछे नहीं रहीं। एक बार दयालशाह के दल ने अंधेरी रात्रि में मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया, घोर संग्राम हुआ, परन्तु मेवाड़ी सैनिक संख्या में अल्प होने के कारण उनमें से अनेक योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए। दयालशाह को बन्दी बना लिया गया। फिर तो बाणों की वृष्टि करके मेवाड़ी वीरों ने मुगलों को बंदी बना दिया और दयालशाह आदि को मुक्त कराया। बाद में ज्ञात हुआ कि इस प्रकार का पराक्रम करने वाले कोई सैनिक नहीं थे, परन्तु दयालशाह की पत्नियाँ सूरजदे एवं पारमदे थीं। मुगल सेना समझ गई कि अरावली पर्वत में मेवाड़ी सेना को पराजित नहीं किया जा सकता। मुगल सेना लौट गई।

अून्य उत्साह में आकर मेवाड़ी वीरों ने चित्तौड़ के बाहर डटी मुगल सेना के

सरगना शाहजहाँ आदि को भी खदेड़ दिया। दयालशाह ने अदम्य साहस के साथ युद्ध लड़ा। उनका उत्साह देखकर राजपूतों ने भी यह वीरता दिखाई कि आजिम को रणथम्भोर की ओर भाग जाना पड़ा। दयालशाह के अश्वारोही आगे बढ़ते रहे और चित्तौड़, सारंगपुर, देवास, चंदेरी आदि पुनः छीन लिये गये।

महाराणा राजसिंह ने राजसमंद के तालाब किनारे मंदिरों का निर्माण कराया और वहाँ शिलालेख लिखवाये। जिनमें से लगभग पच्चीस शिलालेख आज भी तत्कालीन इतिहास की गाथाएँ बताते हुए गौरव से खड़े हैं।

राजसमंद के समीप कांकरोली के निकटस्थ टेकरी पर दयालशाह ने एक भव्य चौमुख नौ मंजिले जिनालय का निर्माण कराया और वि. सं. 1732 में ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित की। आज भी यह टेकरी 'दयालशाह किले' के नाम से विख्यात है।

3. श्री करेड़ा तीर्थ

तीर्थाधिराजः श्री करेड़ा पार्श्वनाथ भगवान्, श्यामवर्ण, पद्मासनस्थ लगभग 90 से.मी.।

तीर्थ स्थलः भूपालसागर गाँव के मध्य।

प्राचीनताः इस तीर्थ की प्राचीनता का सही प्रमाण उपलब्ध नहीं है। वर्तमान जीर्णोद्धार के समय एक प्राचीन स्तंभ प्राप्त हुआ, जिस पर सं. 55 का लेख उत्कीर्ण है, इससे यह प्रतीत होता है कि यह तीर्थ वि. के. पूर्व काल का होगा। वि. सं. 1039 में भट्टारक आचार्य श्री यशोभद्रसूरीश्वरजी द्वारा श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित होने का उल्लेख मिलता है। सं. 1326 चैत्र कृष्णा सोमवती अमावस्या के दिन महारावल श्री चाचिगदेव द्वारा यहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान के मंदिर की सेवा-पूजा निमित्त कुछ धनराशि अर्पण करने का उल्लेख है। भमती से कुछ मूर्तियों पर वि. सं. 1303, 1341 व 1496 के लेख उत्कीर्ण हैं। सभा मंडप के उपरी भाग में एक मस्जिद की आकृति बनी हुई थी। कहा जाता है कि जब अकबर बादशाह यहाँ आया था तब यह आकृति बनवायी थी, ताकि मुसलमान आक्रमणकारी ऐसे सुन्दर चमत्कारिक मंदिर का नाश न करें।

गुर्वावली में उल्लेखानुसार माण्डवगढ़ के महामंत्री श्री पेथड़शाह ने भी श्री पार्श्वनाथ भगवान के मंदिर का यहाँ निर्माण करवाया था।

एक साथ पाँच प्रतिष्ठाएँ–

सांडेराव गच्छ के महान् आचार्य श्री यशोभद्रसूरीश्वरजी म. अत्यन्त ही प्रभावशाली महान् पुरुष थे। उनके जीवन में अनेक चमत्कारी घटनाएँ बनी हैं।

श्री करेड़ा तीर्थ की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर बनी एक चमत्कारी घटना का जिक्र 'प्रबंध पंचशती' ग्रंथ में उपलब्ध है।

पू. आचार्य भगवंत आघाटपुर में विराजमान थे, उस समय करहेटपुर, कविलाणकपुर, सयंभरिपुर, मंडोरपुर तथा भेसराणपुर में भव्य जिनप्रासाद तैयार हो चुके थे। उन पाँचों नगरों के संघ अपने–अपने जिनालयों की प्रतिष्ठा के मुहूर्त लेने के लिए आचार्य भगवन्त के पास आए। आचार्य भगवन्त ने पाँचों मंदिरों की प्रतिष्ठा हेतु एक ही मुहूर्त प्रदान किया।

सभी के आश्चर्य के बीच चार वैक्रिय रूप धारण कर पूज्य सूरिदेव ने पाँचों जिनमंदिरों की एक ही मुहूर्त में प्रतिष्ठा संपन्न की।

इस अद्भुत चमत्कार को देख सभी उस महापुरुष को भाव से वंदन करने लगे।

4. श्री नागहृद तीर्थ

तीर्थाधिराज : श्री शांतिनाथ भगवान, श्याम वर्ण, पद्मासनस्थ, लगभग 270 से.मी.।

तीर्थस्थल : एकलिंगजी (कैलाशपुरी) से एक मील दूर पहाड़ी की ओट में बाघेला तालाब किनारे।

प्राचीनता : इसका प्राचीन नाम नागहृद था, ऐसा उल्लेख है। एक समय यहाँ मेवाड़ की राजधानी थी। सदियों तक यह स्थान जाहोजलालीपूर्ण रहा। यहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर श्री सम्प्रतिराजा द्वारा बनवाने का उल्लेख श्री मुनिसुन्दर सूरीश्वरजी ने 'नागहृद तीर्थ स्तोत्र' में किया है। लगभग विक्रम की पाँचवी शताब्दी में शास्त्रविशारद आचार्य श्री समुद्रसूरीश्वरजी ने शास्त्रार्थ में विजयी होकर यह तीर्थ पुनः श्वेताम्बर संघ के अधीन किया था, ऐसा उल्लेख है। राजा श्री भोजराज ने माण्डवगढ़ में 'भारती भवन' महाविद्यालय के प्रधानाचार्य कर्णाटकी श्री भट्ट–गोविन्द को उनकी कार्यकुशलता पर प्रसन्न होकर यह गाँव इनाम में दिया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। मंत्री श्री पेथड़शाह द्वारा यहाँ श्री नेमिनाथ भगवान का मंदिर

बनवाने का उल्लेख है। कहा जाता है कि किसी वक्त यहाँ 350 जिनमंदिर थे। सायं आरती के वक्त इन मंदिरों की घंटियों की मधुर-मधुर स्वरलहरी एक साथ ऐसी लगती थी मानो देवलोक में इन्द्रों द्वारा प्रभु की भक्ति हो रही हो। यहाँ से देवकुलपाटक तक सुरंग थी। कहा जाता है सुलतान समसुद्दीन के समय इस स्थान को भारी क्षति पहुँची थी। आज यहाँ सिर्फ एक ही मंदिर है। वि. सं. 1494 माघ शुक्ला एकादशी गुरुवार के दिन आचार्य श्री जिनसागरसूरीश्वरजी के सुहस्ते देवकुलपाटक के तवलखागौत्रीय श्रेष्ठी श्री सारंग द्वारा प्रतिष्ठित करवाने का उल्लेख है। पास के एक जिनमंदिर में बासणों पर सं. 1192 व 1356 के लेख उत्कीर्ण थे। इसे श्री पार्श्वनाथ भगवान का प्राचीन मंदिर कहते हैं। इस मंदिर में प्रतिमाजी नहीं है।

विशिष्टता : मेवाड़ की पंचतीर्थी का यह एक तीर्थ स्थान है। श्री शान्तिनाथ भगवान की पद्मासन में इतनी विशाल, सुन्दर व प्राचीन प्रतिमा के दर्शन अन्यत्र अति दुर्लभ हैं।

इस मंदिर के अलावा यहाँ अनेक मंदिरों के खण्डहर पहाड़ी पर दिखाई देते हैं। अगर शोध किया जाय तो काफी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रकाश में आ सकती है।

अन्य मंदिर: इसके पास दो और मंदिर जीर्ण अवस्था में हैं, जिनमें प्रतिमाजी नहीं है। कुछ ही दूर पर एक और मंदिर है,जिसे सास-बहू के मंदिर के नाम से संबोधित किया जाता है। इसमें भी प्रतिमा नहीं है।

कला और सौन्दर्य: प्रभु-प्रतिमा की कलाकृति का जितना वर्णन करें कम है, क्योंकि श्री शान्तिनाथ भगवान की इतनी विशालकाय सुन्दर प्रतिमा शायद ही कहीं हो। पास के जीर्ण मंदिर में स्तंभों व छतों आदि की कला अति दर्शनीय है। पहाड़ पर जंगल में भी प्राचीन मंदिरों के कलात्मक खण्डहर दिखायी देते हैं।

5. श्री नागेश्वर तीर्थ

तीर्थाधिराज : श्री पार्श्वनाथ भगवान, कायोत्सर्ग मुद्रा, हरित वर्ण, 420 से.मी.।

तीर्थस्थल : उन्हेल गाँव के पास, झरने के किनारे।

प्राचीनता : प्रतिमाजी की कलाकृति से इसके लगभग 1100 वर्ष प्राचीन होने का अनुमान लगाया जाता है। यह प्राचीन मंदिर जीर्ण अवस्था में था, जिसकी

देखभाल एक संन्यासी बाबा कर रहा था, प्रतिमा हमेशा अपूजित रहती थी। यह दृश्य कुछ वर्षों पूर्व निकटवर्ती जैनसंघ के ध्यान में आकृष्ट हुआ। परमपूज्य उपाध्याय (तपस्वी) श्री धर्मसागरजी महाराज एवं गणिवर्य श्री अभयसागरजी महाराज की प्रेरणा से जैनसंघ ने सरकारी तौर पर उचित कदम उठाकर मंदिर का कार्यभार अपने हाथ में संभालकर वै.सु. 10 वि. सं. 2026 से विधिपूर्वक सेवा-पूजा प्रारंभ की। इस तीर्थ को प्रकाश में लाने का श्रेय श्री दीपचन्दजी जैन व बसन्तीलालजी डाँगी को है।

विशिष्टता : श्री पार्श्वनाथ भगवान की कायोत्सर्ग मुद्रा में इतनी विशाल व प्राचीन श्वेताम्बर प्रतिमा के दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं। यह प्रतिमा जब संन्यासी बाबा की देखभाल में थी, तब भी चमत्कारिक घटनाओं के कारण स्थानीय लोग आकर्षित होकर दर्शनार्थ आते रहते थे। अभी भी यहाँ चमत्कारिक घटनाएँ घटती रहती हैं। यहाँ के अधिष्ठायक प्रत्यक्ष हैं।

नागेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु के दर्शन के साथ ही साक्षात् प्रभु के अस्तित्व काल की झाँकी प्रस्तुत हो जाती है। प्रभु के मूल नीलवर्ण से युक्त इस प्रतिमा की ऊँचाई, प्रभु की 9 हाथ की (13.5 फुट) ऊँचाई समान ही है। प्रभु के दर्शन के साथ ही सौम्यरस का महासागर उमड़ता हुआ प्रतीत होता है।

यह प्रतिमा प्रभु पार्श्वनाथ के समकालीन होने का अनुमान है। पादपीठ में रहे अष्ट मंगल आदि से भी यह अनुमान सही लगता है।

दंतकथानुसार यह प्रतिमा मरकत मणि की थी, परंतु कालक्रम से इस प्रतिमा पर दुष्टों की नजर पड़ी रत्नमय बिंब को उठाने के लिए अनेक ने प्रयास किए, परंतु अधिष्ठायक देवों ने उन सब को परास्त कर दिया। उसके बाद जैनाचार्य ने अपने तपोबल से धरणेन्द्र देव को प्रत्यक्ष किया और उन्होंने रत्नमय बिंब को पत्थरमय बनाने का निवेदन किया। उस देव ने वैसा ही किया।

विद्वानों के मतानुसार यह प्रतिमा देवनिर्मित है। अहिछत्रा नगरी में इसकी स्थापना की गई । सुरक्षा के अभाव होने पर इस प्रतिमा को पारा नगर में स्थापित किया गया।

संतान-प्राप्ति के लिए दुःखी बने अजितसेन राजा और पद्मावती रानी को इस प्रतिमा की प्राप्ति हुई। एक भव्य जिनालय का निर्माण कराकर इस प्रतिमा जी की नागेन्द्र गच्छ के जैनाचार्य द्वारा प्रतिष्ठा कराई गई। प्रभु प्रतिमा की उपासना के प्रभाव से राजा को संतान की प्राप्ति हुई।

कालक्रम से यह मंदिर जीर्ण हुआ। वि. सं. 1624 में नागेन्द्रगच्छ के जैनाचार्य श्री अभयदेवसूरि के उपदेश से मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ। धीरे-धीरे यह पारस नगर 'पारस नागेश्वर' के नाम से प्रख्यात हुआ।

आज का यह तीर्थ स्थान भूतकाल में वैभवपूर्ण नगर था। इस बात को सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण आज भी विद्यमान हैं।

विषापहारक विश्वेश्वर : श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ की पूजा से सर्प का भयंकर विष भी क्षणभर में दूर हो जाता है। प्रभुजी के इस प्रभाव का अनुभव अनेक ने किया है।

एक भील के बच्चे को सर्प ने डसा, वह मूर्च्छित हो गया.... मंत्र-तंत्र और औषध के सभी उपचार निष्फल गए। अंत में आस्था और विश्वास के साथ नागेश्वर पार्श्वनाथ के समक्ष ले गए। उसी समय गहरी निद्रा से उठने की तरह वह बालक आलस छोड़कर खड़ा हो गया। बालक का जहर दूर हो गया।

6. श्री आयड़ तीर्थ

तीर्थाधिराज : श्री आदीश्वर भगवान, पद्मासनस्थ, श्वेत वर्ण।

तीर्थस्थल : उदयपुर से लगभग एक कि.मी. दूर आयड़ गाँव में।

प्राचीनता : इसका प्राचीन नाम आघाट व आहड़ था, ऐसा उल्लेख मिलता है। भट्टारक आचार्य श्री यशोभद्रसूरीश्वरजी के शिष्य श्री बलिभद्रसूरीश्वरजी द्वारा प्रतिबोधित श्री अल्लुराज (अल्लाट) दसवीं शताब्दी में यहाँ के राजा थे, ऐसा शिला-लेखों में प्रतीत होता है। आचार्य श्री यशोभद्रसूरीश्वरजी द्वारा यहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाने का उल्लेख है। यह वृत्तान्त वि. सं. 1029 पूर्व का है। ग्यारहवीं शताब्दी में कवीश्वर श्री धनपाल द्वारा रचित 'सत्यपुरमण्डन महावीरोत्साह' में यहीं के मंदिरों का उल्लेख है।

इसके बाद भी अनेक प्रकाण्ड आचार्यों का यहाँ पदार्पण हुआ है। यह मंदिर बारहवीं शताब्दी का माना जाता है। यहाँ का अन्तिम जीर्णोद्धार वि. सं. 1995 में होकर प्रतिष्ठा आचार्य श्री विजयनीतिसूरीश्वरजी के सुहस्ते सम्पन्न हुई।

-कुलचंद्रसूरिजी उल्लेख

विशिष्टता : रेवती दोष की भयंकर बीमारी से पीड़ित यहाँ के राजा श्री अल्लुराज

की रानी हरियदेवी की देह को हथुंडी में विराजित आचार्य श्री बलिभद्रसूरीश्वरजी ने वहीं से नीरोग किया था, जिससे प्रभावित होकर राजा व रानी ने उत्साहपूर्वक जैनधर्म अंगीकार किया था। उनके मंत्री ने श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर बनवाया था, जिसकी प्रतिष्ठा श्री बलिभद्रसूरीश्वरजी के गुरु प्रकाण्ड आचार्य यशोभद्रसूरीश्वरजी के सुहस्ते हुई थी।

तेरहवीं शताब्दी में यहीं पर श्रावक हेमचंद्र श्रेष्ठी ने सारे आगम ताड़पत्रों पर लिखवाये थे। उस समय यहीं पर आचार्य श्री जगच्चन्द्रसूरीश्वरजी द्वारा उग्र तपश्चर्या करने पर राजा जैत्रसिंह ने 'तपा' बिरुद् से अलंकृत किया था। तभी से तपागच्छ अस्तित्व में आया। आचार्य श्री जगच्चन्द्रसूरीश्वरजी ने कई वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। उस पर राजा ने उन्हें 'हीरला' बिरुद् से भी सुशोभित किया था।

7. श्री चित्रकूट तीर्थः चित्तौड़

तीर्थाधिराज : श्री आदिनाथ भगवान, श्वेत वर्ण, पद्मासनस्थ, लगभग 35 से.मी.।

तीर्थस्थल : समुद्र की सतह से लगभग 560 मी. ऊचे, समतलपर्वत पर बने 3.5 मील लम्बे व **आधा मील चित्तौड़ किले में।**

प्राचीनता : विक्रम की प्रथम शताब्दी में श्री सिद्धसेन दिवाकर, जिन्हें सम्राट विक्रमादित्य की राज्यसभा के रत्न बनने का सम्मान प्राप्त हुआ था। यहाँ विद्यासाधन हेतु आकर रहे थे, ऐसा उल्लेख मिलता है। आचार्य श्री हरिभद्र-सूरीश्वरजी जो विक्रम की आठवीं-नवमीं शताब्दी में हुए, उनका जन्मस्थान यही शहर है, जो उस समय मध्यमिका नगरी के नाम से प्रसिद्ध था।

यह किला मौर्यवंशी राजा चित्रांगद द्वारा निर्मित होने के कारण इसे चित्रकूट भी कहते हैं। विक्रम की आठवीं शताब्दी में मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा बापा रावल ने मौर्यवंशी राजा मान को हराकर किला अपने अधीन किया । बारहवीं शताब्दी में यह सिद्धराज जयसिंह के अधिकार में आ गया। यह अधिकार कुमारपाल राजा के समय तक रहा। कुमारपाल राजा द्वारा उनके प्राण की रक्षा करनेवाले आलिक कुम्हार को सात सौ गाँवों सहित चित्रकूट पट्टा करके दिये जाने का उल्लेख मिलता है। राजा कुमारपाल सं. 1216 में जैनधर्म के अनुयायी बने। उसके पूर्व के कुछ शिलालेख मिलते हैं। बाद में कुमारपाल के भतीजे अजयपाल

को मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा सामंतसिंह ने हराकर वि. सं. 1231 में इस पर अपना अधिकार किया। उसके बाद मुसलमानों का राज्य होते हुए भी चित्तौड़ गुहिलवंशी सिसोदिया राजाओं के अधिकार में ही रहा।

वि. सं. 1167 में यहाँ श्री महावीर भगवान का मंदिर निर्मित होने का उल्लेख है।

महाराणा तेजसिंहजी की पटरानी और समरसिंहजी की मातुश्री जयतल्लदेवी द्वारा यहाँ वि. सं. 1322 में श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर बनवाने का उल्लेख है।

वि. सं. 1335 फाल्गुन शुक्ला 5 के दिन युवराज अमरसिंहजी के सान्निध्य में श्री आदिनाथ भगवान मंदिर पर ध्वजारोहण होने का उल्लेख मिलता है। वि.सं. 1353 में महाराज समरसिंह के राज्यकाल में जययात्रापूर्वक ग्यारह जिनमंदिरों में जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा की गयी थी।

श्री कुंभा राणा के खजांची श्री वेला ने, वि.सं. 1505 में, पुराने जीर्ण मंदिर के स्थान पर श्री शांतिनाथ भगवान का कलापूर्ण मंदिर बनवाकर श्री जिनसेन-सूरीश्वरजी के हाथों प्रतिष्ठा करवायी थी। इसका नाम अष्टापदावतार श्री शान्ति-जिनचैत्य था, जिसे आज श्रृंगार कहते हैं। वि. सं. 1524 में रचित 'सोमसौभाग्य काव्य' के अनुसार देवकुलपाटक के निवासी व श्री लाखा राणा से सम्मानित श्रेष्ठी श्री वीसल ने पंद्रहवीं शताब्दी में किले में श्री श्रेयांसनाथ भगवान का मंदिर बनवाया था। श्रेष्ठी गुणराज के पुत्र बाल ने पन्द्रहवीं शताब्दी में कीर्तिस्तंभ के पास, चारों ओर देवकुलिकाओं से सुशोभित विशाल जिनमंदिर बनवाकर उसमें श्री सोमसुन्दरसूरीश्वरजी के सुहस्त से तीन जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवायी थी।

महाराणा मौकल के समय उनके मुख्य मंत्री श्री सरणपालजी द्वारा यहाँ अनेक जिनमंदिर बनवाने का उल्लेख है। माण्डवगढ़ के महामंत्री पेथड़शाह ने भी यहाँ मंदिर बनवाया था।

वि.सं. 1566 में श्री जयहेमरचित तीर्थमाला में एवं वि.सं. 1573 में श्री हर्षप्रमोद के शिष्य गयंदी द्वारा रचित तीर्थमाला में यहाँ भिन्न-भिन्न गच्छों के 32 जिनमंदिर रहने का उल्लेख है, जिनमें जैन कीर्तिस्तंभ भी शामिल है। इस सात मंजिल के जैन कीर्तिस्तंभ का निर्माण काल चौदहवीं सदी का माना जाता है, जो श्री आदिनाथ भगवान के स्मारक के निमित्त बनाया था। इसमें अनेक जिनप्रतिमाएँ उत्कीर्ण है।

इस समय चित्तौड़ के किले पर निम्न छह जिनमंदिर विद्यमान हैं–

सबसे बड़ा व मुख्य मंदिर है, श्री ऋषभदेव भगवान का। बावन देवकुलिकाओं से आवृत इस मंदिर का स्थान 'सत्ताईस देवरी' के नाम से पहिचाना जाता है। इसका अर्थ यह किया जाता है कि किसी समय इस जगह पर छोटे–बड़े 27 मंदिर बने होंगे। इस मंदिर के अहाते में भगवान श्री पार्श्वनाथ के दो मन्दिर हैं।

किले के अन्दर रामपोल में एक ही अहाते में भगवान श्री महावीरस्वामी व भगवान श्री शान्तिनाथ के मंदिर हैं। श्री शान्तिनाथ का मंदिर छोटा होते हुए भी उच्च कोटि की कला से समृद्ध है। इसे ही 'श्रृंगार चौरी' कहते हैं।

गौमुखीकुंड के पास श्री पार्श्वनाथ भगवान का चौमुखजी मंदिर है।

विशिष्टता : चित्तौड़ का किला पूरे भारत में विख्यात है। तभी तो कहा जाता है, 'गढ़ तो चित्तौड़ गढ़, और सब गढ़ैया है।' यह सूरमाओं की भूमि है। यहाँ पर अनेक शूरवीर जैन मंत्री व राजा हुए, जिन्होंने समय–समय पर धर्मोत्थान के अनेक कार्य किये।

चौदहवीं शताब्दी में निर्मित कलात्मक जैन कीर्तिस्तम्भ आज भी अपनी शान से खड़ा है व किले पर जैन इतिहास की गौरवगाथा को याद दिलाया करता है।

सं. 1587 में शत्रुंजय का सोलहवाँ उद्धार कराने वाले मंत्री श्री कर्मचन्द्र बच्छावत यहीं के निवासी थे। महाराणा प्रताप के खजाँची दानवीर श्री भामाशाह का महल भी यहीं था।

कला और सौन्दर्य : पहाड़ी पर स्थित इस किले से नीचे का दृश्य अति ही मनोरम प्रतीत होता है। पहाड़ के उपर समतल में इतना लम्बा–चौड़ा विशाल किला भारत में यह एक ही है। यहाँ प्राचीन जिनमंदिरों के खंडहर व कलात्मक अवशेष जगह–जगह दिखायी देते हैं। सं. 1505 में जीर्णोद्धार हुए श्री शान्तिनाथ भगवान के मंदिर (जिसे 'श्रृंगार चौरी' कहते हैं) की कला अति दर्शनीय है। श्री शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा भी अति ही सुन्दर है। ऐसे तो दरेक मंदिर की कला भी मेवाड़–देलवाड़ा, कुम्भारिया आदि के शिल्प से मुकाबला करती है। यहाँ अनेक प्राचीन तालाब, कुण्ड, भग्न महल व इमारतें दिखायी देती हैं। मीराबाई के भव्य विशाल मंदिर में कहीं–कहीं जिनप्रतिमाओं के दर्शन होते हैं। जैन कीर्तिस्तंभ की कला व जोड़नी देखने योग्य है।

8. श्री डूंगरपुर तीर्थ

तीर्थाधिराज : श्री आदिनाथ भगवान, पद्मासनस्थ, लगभग 105 से.मी., श्वेत वर्ण, धातुमयी परिकर युक्त।

तीर्थस्थल : डूंगरपुर गाँव के माणकचौक में।

प्राचीनता : कहा जाता है विक्रम सं. 1526 में इस मंदिर का निर्माण सेठ सांवलदास दावड़ा ने करवाकर आचार्य श्री रत्नसूरिजी के शिष्य श्री उदय वल्लभसूरिजी एवं श्री ज्ञानसागरसूरिजी के सुहस्ते श्री आदिनाथ प्रभु की विशाल धातुमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी थी। मुसलमानों के राजत्वकाल में स्वर्ण प्रतिमा समझकर प्रतिमा को क्षति पहुँचाई गई, तब श्वेतवर्ण की यह प्रतिमा पुनः प्रतिष्ठित की गई। धातुमयी परिकर आज भी मौजूद है, जिस पर सं. 1526 का लेख उत्कीर्ण है।

विशिष्टता : इस प्रभु-प्रतिमा के धातुमयी परिकर में भूत, वर्तमान व भविष्य के चौबीस तीर्थंकरों के यानी 72 प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं, यह यहाँ की मुख्य विशेषता है। ऐसे परिकरयुक्त प्रतिमा के दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं। प्रभु का पबासन भी धातु से निर्मित है, जिसमें 14 स्वप्न, 9 ग्रह, अष्ट मंगल व यक्ष-यक्षिणियों के दर्शन होते हैं।

सोलहवीं सदी में डूंगरपुर के राजा गोपीनाथ व सोमदास के मुख्य मंत्री ओशवाल वंशीय पराक्रमी सेठ शालाशाह यहीं के थे, जिन्होंने उपद्रवी भीलों को हराकर विजयपताका फहराई थी। शेठ शालाशाह पराक्रमी, शूरवीर व धर्मवीर थे। उन्होंने श्री पार्श्वनाथ भगवान का भव्य शिखरोंयुक्त मन्दिर भी बनवाया था, जो यहाँ के जूने घाटी मोहल्ले में स्थित है। शेठ शालाशाह के समय यह एक विराट नगरी थी व लगभग 700 जैन श्रावकों के घर यहाँ थे।

कला और सौन्दर्य : प्रभु प्रतिमा के धातुमय परिकर व पबासन की कला अपना विशेष स्थान रखती है। इस प्रकार के प्राचीन कलात्मक धातुमयी परिकर व पबासन के दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं। इस मंदिर में श्री शांतिनाथ भगवान की 33 से. मी. स्फटिक की प्रतिमा व राजा संप्रतिकाल के पंच धातु से निर्मित 64 जिनबिंब दर्शनीय है।

9. श्री देवकुलपाटक तीर्थ

तीर्थाधिराज : श्री आदिनाथ भगवान, पद्मासनस्थ, श्वेत वर्ण, लगभग 105 से.मी.।

तीर्थस्थल : देलवाड़ा गांव के बाहर पहाड़ी की ओट में।

प्राचीनता : इस तीर्थ की सही प्राचीनता का पता नहीं लग पाया है। वि. सं. 1469 में जीर्णोद्धार होकर पुनः प्रतिष्ठा होने का उल्लेख है।

यह क्षेत्र पहले 'देवकुलपाटक' के नाम से विख्यात था।किसी समय यह एक विराट नगरी थी। वि. सं. 1746 में रचित 'तीर्थमाला' में इसका वर्णन आता है।

वि.सं. 1954 में अंतिम जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है।

विशिष्टता : यह स्थान मेवाड़ की पंचतीर्थी का एक तीर्थ स्थल माना जाता है। कहा जाता है किसी समय यहाँ 300 जिनमंदिर थे। यहाँ दो पर्वतों पर शत्रुंजयावतार व गिरनारावतार की स्थापना की हुई थी। यहाँ से नागदा तक सुरंग थी, ऐसा उल्लेख है। 'संतिकर' स्तोत्र की रचना यहीं पर हुई थी। श्री आदिनाथ प्रभु की इतनी सुन्दर प्रतिमा के दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। आचार्य श्री सोमसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज अनेक बार अपने विशाल साधु समुदाय के साथ यहाँ पधारे ऐसा 'सोम सौभाग्य काव्य' में वर्णन आता है। यहाँ की शिल्पकला देखते ही आबू व राणकपुर याद आ जाते हैं, क्योंकि यहाँ की शिल्पकला भी अपने आप में अलग स्थान रखती है। शिखर की बाह्य कला अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

अन्य मंदिर : इस मंदिर के अतिरिक्त तीन और प्राचीन मंदिर पन्द्रहवीं शताब्दी के हैं।

कला और सौन्दर्य : यहाँ की कला के दर्शन करते ही आबू व कुंभारियाजी याद आ जाते हैं। मंदिर के शिखर, गुंबज, स्तंभों आदि पर किये विभिन्न प्रकार की कला के नमूने अपने आप में निराले प्रतीत होते हैं। यहाँ के मूलनायक श्री आदिनाथ प्रभु की मूर्ति की कला तो देखते ही लगता है प्रभु साक्षात् विराजमान हैं। इतनी प्राचीन प्रतिमा के दर्शन अन्यत्र निःसन्देह दुर्लभ हैं। मंदिर में और भी अनेक प्राचीन कलात्मक प्रतिमाएँ हैं। जैसे मोर व सर्प के बीच आदिनाथ प्रभु के चरण, द्रौपदी, कुन्ती, पाण्डव, आदि ऐसे कई प्रतिबिम्ब हैं। पार्श्वप्रभु के मंदिर में भोंयरे में भी विशाल प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।

10. श्री वटपद्र तीर्थ

तीर्थाधिराज : श्री पौरुषादानीय पार्श्वनाथ भगवान, श्वेत वर्ण, पद्मासनस्थ।

तीर्थस्थल : बड़ौदा गाँव के मध्य।

प्राचीनता : इसके प्राचीन नाम मेघपुरपाटण, वटपद्रनगर आदि रहने का शास्त्रों में उल्लेख है। इस मंदिर का निर्माण वि. सं. 1036 में हुआ माना जाता है। धुलेवा में विराजमान श्री केशरियानाथ भगवान की प्रतिमा वि. सं. 909 में यहीं प्रकट हुई थी, ऐसी मान्यता है। कोई जमाने में यह एक विराट नगरी थी। गाँव के चारों तरफ बिखरे हुए ध्वंसावशेष यहाँ की प्राचीनता की याद दिलाते नजर आते हैं।

विशिष्टता: यह राजस्थान-मेवाड़ के डूंगरपुर जिले का प्राचीनतम तीर्थ रहने के कारण यहाँ की विशिष्ट महानता है।

नगर धुलेवा में विराजित श्री केशरियानाथ भगवान की प्राचीन व चमत्कारिक प्रतिमा यहाँ से लगभग 4 फलांग दूर एक वटवृक्ष के नीचे भूगर्भ से प्रगट हुई थी, ऐसी मान्यता है। जहाँ प्रतिमा प्रगट हुई थी वहाँ पर प्रभु की चरण पादुकाएँ प्रतिष्ठित है व हजारों जैन व जैनेतर दर्शनार्थ आते हैं। भक्तों के दुखहरनार श्री केशरिया बाबा का यह प्राचीन स्थान माना जाने के कारण भक्तगण विशेष श्रद्धा से यहाँ आकर अपनी-अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

11. अंटाली : श्री आदि-शान्ति जैन तीर्थ

तीर्थाधिराज : श्री केसरीया आदिनाथ भगवान एवं श्री संतिकरं शान्तिनाथ भगवान ।।

तीर्थ स्थल : विजयनगर से ३० कि.मी. भीम हाईवे पर

प्राचीनता : इस क्षेत्र का मूल नाम अन्न स्थली था । मन्दिर का निर्माण वि.सं. 1020 में हुआ था । गाँव में माताजी मन्दिर एवं शिव मन्दिरो में जैन धर्म के प्राचीन अवशेष मिलने है ।

अनेक प्राचीन प्रतिभाजी से मंडीत शत्रुंजयावतार, नवग्रह रत्नो की प्रतिमाजी से मंडीत मन्दिर एक विशिष्ट पहचान रखता है । मन्दिर तलघर में बिराजमान श्री

महालक्ष्मी देवी की अतिप्राचीन प्रतिमाजी अतिशय युक्त दर्शनिय है। प्रस्तुत मन्दिर का जीर्णोद्धार पू.आ.भ. पुण्यरत्नसूरिजी म.सा. प्रेरणा से भूषण भाई शाह के मार्गदर्शन में हुआ है।

गांव के बहार तपागच्छ दादाबाडी एवं विशाल गौशाला है।

मेवाड़ देश के हर गाँव तीर्थ तुल्य हैं... यह तो सिर्फ झांखी है.... शोरुम है... कहा जाता है कि '**शोरूम में इतना तो.... गोडाउन में कितना?**'

इन तीर्थों के अलावा भीलवाड़ा के मंदिर, पुर, (तह. भीलवाड़ा), अंटाली, हुरडा, विजयनगर, पारोली, जहाजपुर,चंबलेश्वर तीर्थ, कानोड (राजपुरा), बदनौर, भीम, चारभुजा, झीलवाड़ा, उदयपुर, बनेरा आदि कई तीर्थ अत्यंत दर्शनीय है।

आधार ग्रंथ-

विशेष जानने हेतु निम्नोक्त पुस्तकों का अवलोकन करें।

	पुस्तक के नाम	लेखक/संपादक
1.	जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा	भूषण शाह
2.	जैनत्व जागरण	भूषण शाह
3.	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है।	पू. ज्ञानसुंदर विजयजी म.
4.	लोंकागच्छ और स्थानकवासी	पू. पं. कल्याणविजयजी म.
5.	मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास	पू. ज्ञानसुन्दरविजयजी म.
6.	सांच को आंच नहीं	भूषण शाह
7.	श्रीमान् लोकाशाह	पू. ज्ञानसुन्दरविजयजी म.
8.	क्या धर्म में हिंसा दोषावह है?	भूषण शाह
9.	नवयुग निर्माता	पू. आ. वल्लभ सू. म.
10.	क्या जिनपूजा पाप है?	पू. आ. अभयशेखर सू. म.
11.	उन्मार्ग छोड़िए... सन्मार्ग भजीए	पं. शांतिलालजी
12.	जड़पूजा या गुण पूजा	पं. शान्तिलाल शाह
13.	ढूंढक मत हितशिक्षा	पू. आ.वल्लभ सू.म.
14.	जिन प्रतिमा पूजन सहस्य	अभ्यासी
15.	तत्त्व निश्चय	हीरालाल दुग्गड़
16.	गयवर विलास रास	पू. ज्ञानसुंदर विजयजी म.
17.	प्रतिमा पूजन	पू. पं. भद्रंकरवि. म.
18.	क्या आगमों में मंदिर की मान्यता है?	पू. ज्ञानसुंदर विजयजी म.
19.	मूर्तिपूजा सिद्धि	पू. आ. सुशीलसू. म.
20.	पूर्नजन्म	भूषण शाह
21.	मूर्तिपूजा	खूबचंदभाई पंडित
22.	आ पत्थर नथी पण प्रभु छे	पू. प्र. हरिशभद्र वि.म.
23.	जिनशासन नी अहिंसा	पू. आ. योगतिलकसू. म.
24.	मूर्ति मंडन	पू. आ. लब्धि सू. म.
25.	कमजोर कडी कौन?	पू. आ. जिनपियूषसागरजी म.

26.	सच्चाई छुपाने से सावधान!	पू.आ. पीयूषसागरजी म.
27.	प्रतिमा पूजन पच्चीसी	पू. आ. जिनमणिप्रभ सूरि म.
28.	सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली	पू. आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.
29.	प्रश्न कई उत्तर नहीं	श्रावक गण
30.	सम्यक्त्व शल्योद्धार	पू. आत्मारामजी म.सा.
31.	मुहपत्ती चर्चा	पू. बुद्धिविजयजी म.सा.
32.	भक्ति है मार्ग मुक्ति का	पू. आ. कलापूर्ण सू. म.सा.
33.	प्रतिमाशतक	महो. यशोविजयजी म.सा.
34.	अष्टप्रकारी पूजा का रास	सा. दिव्यदर्शनाश्रीजी म.सा.
35.	द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	भूषण शाह
36.	मूर्तिपूजा विधि संग्रह	प. कल्याण वि.. म.सा.
37.	मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म	हीरालाल दुग्गड़
38.	गप्प दीपिका समीर	प.आ. वल्लभ सू. म.
39.	मूर्ति से मूर्तिमान की पूजा	पू. विद्यानंदजी म.सा.
40.	चलो मंदिर जाएँ	पू.मु. दीपकरत्नविजय म.सा.
41.	जरा याद करो कुरबानी?	पू.सा. प्रियधर्माश्रीजी म.सा.
42.	हिमवंत स्थविरावली	सं.पू.पं.भुवनसुन्दरवि.म.सा. पू.पं.गुणसुंदरवि.म.सा.
43.	सच्चा वह मेरा या मेरा वह सच्चा	सं. पू. भावेशरत्नवि.म.सा.

मिशन जैनत्व जागरण द्वारा प्रसारित साहित्य

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित हिन्दी पुस्तक

	मूल्य
1. जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा	100/-
2. जैनत्व जागरण	200/-
3. जागे रे जैन संघ	30/-
4. पाकिस्तान में जैन मंदिर	100/-
5. पल्लीवाल जैन इतिहास	100/-
6. दिगंबर संप्रदाय एक अध्ययन	100/-
7. श्रीमहाकालिका कल्प एवं प्राचिन तीर्थ पावागढ़	100/-
8. अकबर प्रतिबोधक कौन?	50/-
9. इतिहास गवाह है।	30/-
10. तपागच्छ इतिहास	100/-
11. सांच को आंच नहीं	100/-
12. आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
13. जगजयवंत जीरावला	100/-
14. द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	50/-
15. प्रभुवीर की श्रमण परंपरा	20/-
16. इतिहास के आइने में आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ	100/-
17. जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता	100/-
18. जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कर	50/-
19. प्रतिमा पूजन रहस्य	300/-
20. जैनत्व जागरण भाग-2	200/-
21. जिनपूजा विधि एवं जिनभक्तों की गौरवगाथा	200/-
22. अनुपमंडल और हमारा संघ	100/-

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

१. मंत्रं संसार सारं	२००/-
२. जंबू जिनालय शुद्धिकरण	३०/-
३. जागे रे जैन संघ	२०/-
४. घंटनाद	
५. श्रुत रत्नाकर (पू.गुरुदेव जंबूविजयजी म.सा. नुं. जीवन चरित्र)	

भूषण शाह द्वारा संपादित अंग्रेजी पुस्तक

1. Lights	300/-
2. History of Jainism	300/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा लिखित/संपादित

	मूल्य
1. समत्वयोग (1996)	100/-
2. अनेकांतवाद (1999)	100/-
3. अणुपेहा (2001)	100/-
4. आणंदा (1999)	50/-
5. सदयवत्स कथानकम् (1999)	50/-
6. संप्रतिनृप चरित्रम् (1999)	50/-
7. दान एक अमृतमयी परंपरा (2012)	310/-
8. हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप (1992)	100/-
9. दोहा पाहुडं (1999)	50/-
10. बाराक्खर कवक (1997)	50/-
11. प्रभुवीर का अंतिम संदेश(2000)	50/-
12. दोहाणुपेहा (संपादित-1998)	50/-
13. तरंगवती (1999)	50/-
14. हरिवंशपुराण	-
१५. नंदावर्त नुं नंदनवन (२००३)	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा अनुवादित

1. संवेदन की सरगम (2007)50/-
2. संवेदन की सुवास (2008)50/-
3. संवेदन की झलक (2008)50/-
4. संवेदन की मस्ती (2007)50/-
5. आत्मकथाएँ (संपादित) (2013) 50/-
6. शासन सम्राट(जीवन परिचय) 199950/-
7. विद्युत सजीव या निर्जीव (1999) 50/-

प. पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखित साहित्य

1. मूर्तिपूजा का प्राचिन इतिहास 100/-
2. श्रीमान् लोंकाशाह 100/-
3. हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है 30/-
4. सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली 100/-
5. बत्तीस आगम सूत्रों से मूर्तिपूजा सिद्धि 50/-
6. क्या जैन धर्म में प्रभु-दर्शन-पूजन की मान्यता थी? 50/-

अन्य साहित्य

1. नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ.वल्लभसूरि म.सा.) 200/-
2. मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित) 50/-
3. लोंकागच्छ और स्थानकवासी (पू. कल्याण वि. म.) 100/-
4. हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन) 30/-
5. सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा. 20/-
6. क्या जिनपूजा करना पाप है? (पू.आ. अभयशेखरसूरिजी म.सा.)30/-
7. जैन शासन की आदर्श घटनाएँ (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.) 30/-
8. उन्मार्ग छोडिए, सन्मार्ग भजीए (पं. शांतिलालजी जैन) 30/-
9. जड़पूजा या गुणपूजा - एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी) 30/-
10. पुनर्जन्म - (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.) 30/-
11. क्या धर्म में हिंसा दोषाव्ह है? 30/-
12. तत्त्व निश्चय (कुए की गुंजार पुस्तक की समीक्षा) --
13. चलो कदम उठाएँ (सं. पू.मु. ऋषभरत्न वि.म.सा.) 50/-
14. जिनमन्दिर ध्वजारोहण विधि-सं. जे.के. संघवी/सोहनलालजी सुराणा

चल रहे कार्य

1. जैन इतिहास (श्री आदिनाथ परमात्मा से अभी तक)
2. सूरि मंत्र कल्प

संपादित ग्रंथों की सूचि : (प्रकाशनाधीन)

1. जैन दर्शन का रहस्य
2. प्राचिन जैन तीर्थ – अंटाली
3. श्री सराक जैन इतिहास
4. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 1,4,5 (साथ में)
5. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 2,3 (साथ में)
6. जैन स्तोत्र संग्रह
7. जैन नगरी तारातंबोल – एक रहस्य
8. Research on Jainism
9. मिशन जैनत्व जागरण और मेरे विचार
10. जैन ग्रंथ– नयचक्रसार
11. प्राचीन जैन पूजा विधि– एक अध्ययन
12. जैनत्व जागरण की शौर्य कथाएँ
13. जैनागम अंश
14. जैन शासन का मुगल काल और मुगल फरमान
15. जैन योग और ध्यान
16. जैन स्मारकों के प्राचिन अंश
17. યુગ યુગમાં મળજો જૈન શાસન (ગુજરાતી)
18. मंत्रं संसार सारं (भाग –2) (पुनः प्रकाशन)
19. मंत्रं संसार सारं (भाग –3) (पुनः प्रकाशन)
20. मंत्रं संसार सारं (भाग –4) (पुनः प्रकाशन)
21. मंत्रं संसार सारं (भाग –5) (पुनः प्रकाशन)
22. अज्ञात जैन तीर्थ
23. प्राचीन जैन स्मारकों का रहस्य
24. जैन दर्शन – अध्ययन एवं चिंतन
25. जैन मंदिर शुद्धिकरण
26. सूरिमंत्र कल्प संग्रह

27. अजमेर प्रांत के जैन मंदिर
28. जैनत्व जागरण – 3
29. विविध तीर्थ कल्पों का अध्ययन
30. जैनदेवी महालक्ष्मी–मंत्रकल्प
31. जैन सम्राट संप्रति – एक अध्ययन
32. जैन आराधना विधि संग्रह
૩૩. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૧, ગુજરાતી)
૩૪. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૨, ગુજરાતી)
૩૫. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૩, ગુજરાતી)
૩૬. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૪, ગુજરાતી)
૩૭. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૫, ગુજરાતી)
38. सम्मेतशिखर महात्म्य सार
39. मेवाड़ देश में जैन धर्म
40. જંબૂ શ્રુત એન્સાયક્લોપિડિયા (પૂ. ગુરૂદેવશ્રી ને સમર્પિત શ્રુત પુષ્પ)
41. जैन धर्म और स्वराज्य
42. ચંદ્રોદય (પૂ. સા. ચંદ્રોદયાશ્રીજી મ.સા. નું જીવનકવન)
43. जैन श्राविका शान्तला
44. પૂ. બાપજી મહારાજ (સંઘસ્થવિર આ. ભ. સિદ્ધિસૂરિજી મ.સા.નું ચરિત્ર)
45. મારા ગુરૂદેવ (પૂ. જંબૂવિજયજી મ.સા. નું સંક્ષિપ્ત જીવન દર્શન)
46. જૈન દર્શન અને મારા વિચાર
47. श्री भद्रबाहु संहिता – (आ. भद्रबाहु स्वामी द्वारा निमित्त ज्ञान प्रकरण)
48. પ્રશસ્તિ સંગ્રહ (પ. પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. દ્વારા લખાયેલી પ્રશસ્તિ-પ્રસ્તાવના સંગ્રહ)
49. ગુરૂમૂર્તિ-દેવીદેવતા મૂર્તિ અંગે વિચારણા...

*** नोंध – सभी ग्रंथों का कार्य पूर्ण हो चुका है। सभी ग्रंथ जल्द ही प्रकाशित होंगे।**

प.पू. पंजाब देशोद्धारक आ. विजयानंद सू. म. (आत्मारामजी म.) का सन्मार्गदर्शक साहित्य

1.	सम्यक्त्व शल्योद्धार	325/-
2.	नवयुग निर्माता	200/-
3.	जैन तत्त्वादर्श	300/-
4.	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर	200/-
5.	जैन मत वृक्ष और पद्य साहित्य	200/-
6.	जैन मत का स्वरूप	125/-
7.	नवतत्त्व संग्रह	300/-
8.	ईसाईमत समीक्षा	100/-
9.	चिकागो प्रश्नोत्तर	100/-
10.	अज्ञानतिमिर भास्कर	500/-
11.	तत्त्व निर्णय प्रसाद	500/-

प.पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखित साहित्य

1.	मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास	100/-
2.	श्रीमान् लौंकाशाह	100/-
3.	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है	30/-
4.	सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली	100/-
5.	क्या जैन धर्म में प्रभु दर्शन - पूजन की मान्यता थी ?	50/-
6.	जैन जाति महोदय	400/-

पू. गुरुदेवमुनिराजश्री - भुवनविजयान्तेवासि - मु. श्री जंबूविजयजी म. संशोधित - संपादित ग्रंथो

1.	द्वादशारनयचक्र भाग-1	300/-
2.	द्वादशारनयचक्र भाग-2	300/-
3.	द्वादशारनयचक्र भाग-3	300/-
4.	आचारांगसूत्र मूलमात्र	300/-

5. सूत्रकृतांगसूत्र मूलमात्र 300/-
6. स्थानांग तथा समवायांगसूत्र मूलमात्र 300/-
7. ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र मूलमात्र 300/-
8. अनुयोगद्वार सूत्र चूर्णि, हारिभद्री वृत्ति तथा मलधारिहेमचन्द्रसूरिविरचितवृत्ति सहित भाग-1 300/-
9. अनुयोगद्वार सूत्र चूर्णि, हारिभद्री वृत्ति तथा मलधारिहेमचन्द्रसूरिविरचितवृत्ति सहित भाग-2 300/-
10. स्थानाङ्गसूत्र अभयदेवसूरिविरचितवृत्ति सहित भाग-1 300/-
11. स्थानाङ्गसूत्र अभयदेवसूरिविरचितवृत्ति सहित भाग-2 300/-
12. स्थानाङ्गसूत्र अभयदेवसूरिविरचितवृत्ति सहित भाग-3 300/-
13. समवायाङ्गसूत्र अभयदेवसूरिविरचितवृत्ति सहित 300/-
14. द्रव्यालंकार स्वोपज्ञटीकासहित 300/-
15. न्यायप्रवेशक बौद्धाचार्य दिङ्नाग प्रणीत 300/-
16. सर्वसिद्धान्त प्रदेशक 300/-
17. योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भाग-1 300/-
18. योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भाग-2 300/-
19. योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भाग-3 300/-
20. पाटणना जुदा - जुदा भंडारोना हस्तलिखित ग्रंथोनुं सूचिपत्र भाग-1 300/-
21. पाटना जुदा - जुदा भंडारोना हस्तलिखित ग्रंथोनुं सूचिपत्र भाग-2 300/-
22. पाटना जुदा - जुदा भंडारोना हस्तलिखित ग्रंथोनुं सूचिपत्र भाग-3 300/-
23. पाटना जुदा - जुदा भंडारोना हस्तलिखित ग्रंथोनुं सूचिपत्र भाग-4 300/-
24. जैसलमेरना भंडारनुं सूचिपत्र 300/-

25. धर्मबिन्दु (कर्ता-हिरभद्रसूरि म.)
मुनिचन्द्रसूरिविरचितटीकासहित 300/-
26. सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन-लघुवृत्ति (प्र. आवृत्ति) 300/-
27. सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन-लघुवृत्ति (प्र. आवृत्ति) 300/-
28. सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन रहस्यवृत्ति 300/-
29. सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन (मूलसूत्रो अकारादिक्रम युक्त) 300/-
30. वैशेषिकसूत्र - चन्द्रानन्दविरचितवृत्तिसहित 300/-
31. उपदेशमाला - हेयोपादेयाटीका सहित 300/-
32. स्थानांगसूत्र सटीक भाग-1 (द्वितीय आवृत्ति) 300/-
33. स्थानांगसूत्र सटीक भाग-2 (द्वितीय आवृत्ति) 300/-
34. स्थानांगसूत्र सटीक भाग-3 (द्वितीय आवृत्ति) 300/-
35. योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भाग-1 (द्वितीय आ.) 300/-
36. योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भाग-2 (द्वितीय आ.) 300/-
37. योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भाग-3 (द्वितीय आ.) 300/-
38. ठाणांगसमवायांगसुत्तं च (शीलांकाचार्य कृत्त टीकोषेत) 300/-
39. आचारांगसूत्रकृतांगसूत्र सटीक 300/-
40. आचारांगसूत्र (शीलाचार्यकृतवृत्ति युक्त) प्रथम श्रुतस्कंधना
प्रथम चार अध्ययन पर्यंत 300/-
41. पंचसूत्र सटीक 300/-
42. गहुली संग्रह 300/-
43. सूरिमंत्रकल्पसमुच्चय भाग-1 300/-
44. सूरिमंत्रकल्पसमुच्चय भाग-2 300/-
45. स्त्रीनिर्वाणकेवलीभुक्ति प्रकरणे 300/-
46. जैसलमेर केटलोग - मूळकर्ता सी.डी. दलाल 300/-
47. श्री सिद्धभुवन प्राचीन स्तवन संग्रह 50/-
48. गुरुवाणी (पूज्यश्रीना प्रवचनोनो संग्रह) भाग-1 50/-

49. गुरुवाणी (पूज्यश्रीना प्रवचनोनो संग्रह) भाग-2 50/-
50. गुरुवाणी (पूज्यश्रीना प्रवचनोनो संग्रह) भाग-3 50/-
51. गुरुवाणी (पूज्यश्रीना प्रवचनोनो संग्रह) भाग-4 50/-
52. गुरुवाणी (पूज्यश्रीना प्रवचनोनो संग्रह) भाग-5 50/-
53. हिमालय नी पदयात्रा 50/-
54. अंतरिक्ष पार्श्वनाथ तीर्थ का इतिहास 50/-
55. नंदीसूत्र मलयगिरि विरचित वृत्ति सहित 300/-
56. અંતરિક્ષ પાર્શ્વનાથ તીર્થનો ઈતિહાસ 50/-
57. गुरुवाणी (हिन्दी) 1 50/-
58. गुरुवाणी (हिन्दी) 2 50/-
59. गुरुवाणी (हिन्दी) 3 50/-
60. गुरुवाणी (हिन्दी) 4 50/-
61. गुरुवाणी (हिन्दी) 5 50/-
62. हिमालय की पदयात्रा (हिन्दी) 50/-
63. नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत विभाग) 300/-
64. नमस्कार स्वाध्याय (प्राकृत विभाग) 300/-
65. अभिधर्मकोष कारिका 50/-
66. हस्तलीखीत ग्रंथो की सूची - 1 -
67. हस्तलीखीत ग्रंथो की सूची - 2 -
68. हस्तलीखीत ग्रंथो की सूची - 3

भूषण शाह द्वारा लिखित-संपादित हिन्दी पुस्तक

1. जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा 100/-
2. ● जैनत्व जागरण 200/-
3. ● जागे रे जैन संघ 30/-
4. पाकिस्तान में जैन मंदिर 100/-
5. पल्लीवाल जैन इतिहास 100/-

6.	दिगंबर संप्रदाय : एक अध्ययन	100/-
7.	श्री महाकालिका कल्प एवं प्राचीन तीर्थ पावागढ	100/-
8.	अकबर प्रतिबोधक कौन ?	50/-
9.	● इतिहास गवाह है।	30/-
10.	तपागच्छ इतिहास	100/-
11.	● सांच को आंच नहीं	100/-
12.	आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
13.	जगजयवंत जीरावाला	100/-
14.	द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	50/-
15.	प्रभुवीर की श्रमण परंपरा	20/-
16.	इतिहास के आइने में आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ	100/-
17.	जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता	100/-
18.	जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कार	50/-
19.	● प्रतिमा पूजन रहस्य	300/-
20.	जैनत्व जागरण भाग-2	200/-
21.	जिनपूजा विधि एवं जिनभक्तों की गौरवगाथा	200/-
22.	● अनुपमंडल और हमारा संघ	100/-
23.	अकबर प्रतिबोधक कौन ? भाग-2	200/-
24.	इशुख्रीस्त पर जैन धर्म का प्रभाव	50/-
25.	खरतरगच्छ सहस्त्राब्दी निर्णय	50/-
26.	प्राचीन जैन स्मारको का रहस्य	250/-
27.	जैन नगरी तारातंबोल : एक रहस्य	50/-
28.	जंबू जिनालय शुद्धिकरण	100/-
29.	प्राचीन भारत की यात्रा पद्धति	300/-
30.	शंकाए सही, समाधान नहीं.	50/-

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

1. મંત્ર સંસાર સારં 200/-
2. ● જંબૂ જિનાલય શુદ્ધિકરણ 30/-
3. ● જાગે રે જૈન સંઘ 20/-
4. ● ઘંટનાદ
5. ● શ્રુત રત્નાકર (પૂ. ગુરુદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. નું જીવન ચરિત્ર)
6. જૈનશાસનના વિચારણીય પ્રશ્નો 50/-

भूषण शाह द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक

1. ● Lights 300/-
2. ● History of Jainism 300/-

अन्य साहित्य

1. नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ. वल्लभसूरि म.सा.)200/-
2. मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित) 50/-
3. मूर्ति मंडन - आ. लब्धि सू.म. 100/-
4. हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन) 30/-
5. सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा. 20/-
6. ધરતી પર સ્વર્ગ - સા. નંદીયશાશ્રીજી મ. 20/-
7. Heaven on Earth - SA Nandiyasha Shriji M.S. 20/-
8. कर्म विज्ञान 20/-
9. जडपूजा या गुणपूजा - एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी) 30/-
10. पुनर्जन्म - (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.) 30/-
11. क्या धर्ममें हिंसा दोषावह है ? 30/-
12. तत्त्व निश्चय (कुएँ की गुंजार पुस्तक की समीक्षा) -
13. बत्तीस आगमों से मूर्तिसिद्धि (आशिष तालेडा) 50/-
14. जैन ज्ञाति निर्णय 50/-
15. श्वेतांबर दीगंबर समन्वय 200/-

10.	तपागच्छ इतिहास	100/-
11.	● सांच को आंच नहीं	100/-
12.	आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
13.	जगजयवंत जीरावाला	100/-
14.	द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	50/-
15.	प्रभुवीर की श्रमण परंपरा	20/-
16.	इतिहास के आइने में आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ	100/-
17.	जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता	100/-
18.	जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कार	50/-
19.	● प्रतिमा पूजन रहस्य	300/-
20.	जैनत्व जागरण भाग-2	200/-
21.	जिनपूजा विधि एवं जिनभक्तों की गौरवगाथा	200/-
22.	● अनुपमंडल और हमारा संघ	100/-
23.	अकबर प्रतिबोधक कौन ? भाग-2	200/-
24.	इशुख्रीस्त पर जैन धर्म का प्रभाव	50/-
25.	खरतरगच्छ सहस्त्राब्दी निर्णय	50/-
26.	प्राचीन जैन स्मारको का रहस्य	250/-
27.	जैन नगरी तारातंबोल : एक रहस्य	50/-
28.	जंबू जिनालय शुद्धिकरण	100/-
29.	प्राचीन भारत की यात्रा पद्धति	300/-
30.	शंकाए सही, समाधान नहीं.	50/-

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

1.	મંત્ર સંસાર સારં	200/-
2.	● જંબૂ જિનાલય શુદ્ધિકરણ	30/-
3.	● જાગે રે જૈન સંઘ	20/-
4.	● ઘંટનાદ	

5. ● શ્રુત રત્નાકર (પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. નું જીવન ચરિત્ર)

6. જૈનશાસનના વિચારણીય પ્રશ્નો 50/-

भूषण शाह द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक

1. ● Lights 300/-

2. ● History of Jainism 300/-

अन्य साहित्य

1. नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ. वल्लभसूरि म.सा.)200/-
2. मूर्तिपूजा (गुजराती–खुबचंदजी पंडित) 50/-
3. मूर्ति मंडन – आ. लब्धि सू.म. 100/-
4. हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन) 30/-
5. सफलता का रहस्य – सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा. 20/-
6. ધરતી પર સ્વર્ગ - સા. નંદીયશાશ્રીજી મ. 20/-
7. Heaven on Earth - SA Nandiyasha Shriji M.S. 20/-
8. कर्म विज्ञान 20/-
9. जडपूजा या गुणपूजा – एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी) 30/-
10. पुनर्जन्म – (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.) 30/-
11. क्या धर्ममें हिंसा दोषावह है ? 30/-
12. तत्त्व निश्चय (कुएँ की गुंजार पुस्तक की समीक्षा) -
13. बत्तीस आगमों से मूर्तिसिद्धि (आशिष तालेडा) 50/-
14. जैन ज्ञाति निर्णय 50/-
15. श्वेतांबर दीगंबर समन्वय 200/-